Chap-2

अध्याय-द्वितीय

सौन्दर्यशास्त्र के प्रमुख तत्व

सौंदर्य :

व्युत्पत्ति- अर्थ- परिभाषा- पश्चिमी तथा भारतीय स्वरूप-वस्तुवादी-आत्मवादी- समन्वयवादी दृष्टिकोण- पश्चिमी तथा भारतीय विद्वानों के वर्गीकरण ।

कल्पना :

अर्थ- स्वरूप- परिभाषा- कल्पना और फैंसी में अन्तर - पश्चिमी तथा भारतीय विद्वानों के वर्गीकरण ।

बिंब :

अर्थ - स्वरूप- परिभाषा- बिंब और रूपक - बिंब और मिथक में अन्तर - पश्चिमी तथा भारतीय विद्वानों के वर्गीकरण ।

प्रतीक :

अर्थ - स्वरूप- परिभाषा- प्रतीक और रूपक - प्रतीक और बिंब- प्रतीक और मिथक- प्रतीक और संकेत में अन्तर - पश्चिमी तथा भारतीय विद्वानों के वर्गीकरण ।

मिथक :

अर्थ-स्वरूप-परिभाषा-मिथक और निजंधरी कथा-मिथक और धर्मगाथा-मिथक और लोक कथा में अन्तर-पश्चिमी तथा भारतीय विद्वानों के वर्गीकरण ।

सौंदर्य की व्युत्पत्ति- अर्थ और परिभाषा :

सौंदर्यशास्त्र में सौंदर्य का विशेष महत्व है। इसके अंतर्गत सौंदर्य की व्यापक विवेचना हुई है। भारत में तो यह शब्द बहुत ही प्रचलित रहा है। और किसी न किसी रूप में इस पर विचार विश्लेषण होता रहा है। भारतीय साहित्य में इसके अनेक पर्यायवाची शब्द प्रचलित हैं जैसे- लावण्य, चारु, पेशल, राम, अभिराम, मनोज्ञ, सौम्य, बन्धुर, साधु, शोभन, रमणीय, रमणीयक, सुमन और वल्गु आदि।[१] ऋग्वेद में सौंदर्य के लिए अप्स: , लावण्य, शुभ, पेशल और हिरण्यपेशस आदि पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग हुआ है। इन सब पर्यायवाची शब्दों से अनुमान लगाया जा सकता है कि 'सौंदर्य' शब्द भारत में कितना प्रचलित एवं महत्वपूर्ण रहा है।

सौंदर्य की व्युत्पत्ति अनेक प्रकार से की गई है तथा इसके अनेक अर्थ हैं - वाचस्पत्यकोश के अनुसार 'सुन्दर' शब्द 'सु' उपसर्गपूर्वक 'उन्द' धातु से 'अरन्' प्रत्यय जुड़कर बना है। 'उन्द' का अर्थ है आर्द्र करना। 'अरन्' कर्तृवाचक प्रत्यय है। 'सु' का अर्थ है भली-भाँति। इस प्रकार से सुन्दर का व्युत्पत्तिमूलक अर्थ है 'अच्छी प्रकार आर्द्र या सरस करने वाला'।[२]

हलायुध कोश में सुन्दर शब्द की व्युत्पत्ति 'सु' पूर्वक 'उन्दी' (क्लेदने) और 'अर' प्रत्यय लगाकर की गई है। सुन्दर के अर्थ के विषय में लिखा है 'सुष्ठु उनत्तिआर्द्री करोति चित्त मिति' अर्थात् जो चित्त को अच्छी तरह से आर्द्र कर दे वह सुन्दर है।[३]

सुन्दर की एक अन्य व्युत्पत्ति इस प्रकार से है 'सुन्दंराति इति, सुन्दरम्', तस्य भाव: सौंदर्यम्।' 'सुन्द' को जो लाता हो वह सुन्दर, और उसका भाव जहाँ हो, वह 'सौंदर्य' कहलाता है। सुन्द पूर्वक 'रा' (धातु) अर्थात् आदाने' (लाना)

धातु से औणादिक `अच्` प्रत्यय से `सुन्दर` शब्द तथा `गुण-वचन ब्राह्मणादिभ्य: ष्यञ्` इस पाणिनी सूत्र से `ष्यञ्` प्रत्ययोपरान्त `सौंदर्य` शब्द बना है।[४]

इसी प्रकार शिवराम आप्टे का मत है कि `सुन्दर` शब्द की व्युत्पत्ति सुन्द+अर से हुई है।[५]

सौंदर्य अंग्रेजी शब्द `ब्यूटी( Beauty ) का पर्यायवाची है। ब्यूटी की व्युत्पत्ति है बौ( beau ) + टी। बौ से अभिप्राय है प्रिय तथा रसिक या श्रृंगारी पुरुष। इसी प्रकार `टी` भाववाचक प्रत्यय है। इस तरह से ब्यूटी (Beauty) का अर्थ हुआ रसिक का भाव या रसिकता तथा श्रृंगारी पुरुष का गुण।

सौंदर्य की परिभाषा :

पाश्चात्य तथा भारतीय विचारकों ने सौंदर्य के सम्बंध में अपने- अपने विचार प्रस्तुत किए हैं। अब हम कुछ विद्वानों की परिभाषाओं पर विचार करेंगे।

पाश्चात्य विचारक :

पश्चिम में तो सौंदर्य की व्यापक चर्चा हुई है। प्लेटो के अनुसार सुन्दर शिव और सत्य एक है। सुन्दर परम है और पूर्ण है तथा सुन्दर के लिए नैतिक होना आवश्यक है।[६] प्लोटिनस ने परम शक्ति में शिव तत्व की अवस्थिति मानी है। उनका मत है कि ईश्वर के शिवरूप में ही सौन्दर्य है।[७] कीट्स(Keats) ने सत्य को ही सौंदर्य माना है।[८] श्लेगेल(Slagel) सौजन्य के आनन्द प्रधान स्वरूप को सौंदर्य मानते हैं।[९] क्रोचे ने अभिव्यंजना में ही सौंदर्य के अस्तित्व को स्वीकार किया है।[१०] हीगेल ने सौंदर्य को अनुभूति का विषय स्वीकार किया है और उसकी सत्ता, विचार में स्वीकार की है।[११]

भारतीय विचारक :

संस्कृत के विद्वानों ने भी सौंदर्य को परिभाषित किया है । संस्कृत के विद्वानों के मत इस प्रकार से हैं - पंडितराज जगन्नाथ ने सौंदर्य की परिभाषा इस प्रकार से दी है -

रमणीयार्थ प्रतिपादक: शब्द: काव्यम् ।
रमणीयता च लोकोत्तरा ह्लादजनक ज्ञानगोचरता ।[१२]

अर्थात् रमणीयता में आह्लाद अथवा आनन्द तत्व समाहित रहता है । उन्होंने आनन्द को ही सौंदर्य का कारण माना है ।कालिदास सौंदर्य के विषय में लिखते हैं -

प्रियेषु सौभाग्य फला हि चारुता ।[१३]

माघ का मत है -

क्षणे-क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूप रमणीयताया :[१४]

अर्थात् क्षण-क्षण में जो नवीनता ग्रहण करता है वही रमणीय रूप कहलाता है ।

संस्कृत कवियों के अतिरिक्त हिन्दी के विद्वानों ने भी सौंदर्य के सम्बंध में अपने महत्वपूर्ण विचार व्यक्त किए हैं । उन पर विचार कर लेना भी समीचीन रहेगा - डॉ० हरद्वारीलाल शर्मा की धारणा है कि-`अपनी अनुभूति, स्मृति, कल्पना आदि द्वारा आनन्द को उत्पन्न करने वाले वस्तु के गुण को सौन्दर्य और वस्तु को सुन्दर कहते हैं ।[१५]

जयशंकर प्रसाद ने सौंदर्य को चेतना का उज्ज्वल वरदान कहा है -

उज्ज्वल वरदान चेतना का
सौंदर्य जिसे सब कहते हैं ।[१६]

हरिवंश सिंह ने स्थूल या सूक्ष्म जगत में आत्मा की अभिव्यक्ति को ही सौंदर्य माना है ।[१७]

पंत जी के अनुसार -

वही प्रज्ञा का सत्य-स्वरूप
हृदय में बनता प्रणय-अपार ;
लोचनों में लावण्य - अनूप,
लोकसेवा में शिव अविकार,
स्वरों में ध्वनित मधुर, सुकुमार
सत्य ही प्रमोद्गार
दिव्य-सौंदर्य, स्नेह साकार, भावना-मय संसार ।[१८]

हंसकुमार तिवारी के शब्दों में 'वास्तव में सौंदर्य एक विशेष बोध है जिसके पीछे ज्ञान, आनन्द, बिम्बात्मक वृत्ति आदि का सामंजस्य है । इसलिए इसका कोई सर्वमान्य लक्षण देना संभव भी नहीं । इस सौंदर्य का आनन्द भी एक स्वतंत्र कोटि का है जो कि अनुभव वेद्य है । न तो वह प्रत्यक्ष अनुभूति हो सकता है न प्रमाणित । लेकिन सौन्दर्य की उपलब्धि होती है ।[१९]

इस तरह से भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों ने सौंदर्य को परिभाषित करने का प्रयत्न किया है । कुछ विद्वान सौंदर्य को आन्तरिक मानते हैं और कुछ बाह्य । कुछ मध्यमार्गी विचारक भी हैं ।

सौन्दर्य का स्वरूप :

सौंदर्य की परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि सौंदर्य के सम्बन्ध में सभी विद्वानों ने अलग- अलग विचार व्यक्त किए हैं । कुछ विद्वान सौंदर्य की वस्तुगत सत्ता का प्रतिपादन करते हैं तो कुछ उसको आत्मा से सम्बंधित मानते हैं । इन दोनों मतो के अतिरिक्त कुछ मध्यमार्गी विचारक भी हैं । इस प्रकार से सौंदर्य-शास्त्रियों के तीन वर्ग हैं :-

(१) वस्तुवादी विचारक
(२) आत्मवादी विचारक
(३) समन्वयवादी विचारक

(१) वस्तुवादी विचारक :

वस्तुवादी विचारक सौंदर्य की सत्ता, वस्तु की संरचना में ही मानते हैं। इनकी मान्यता है कि सौंदर्य वस्तु का गुण है इसलिए वह वस्तु के रूप आकार में निहित रहता है। इस वर्ग के विचारकों ने विभिन्न गुणों को विशेष महत्व दिया है। वस्तु के वह गुण हैं- वस्तु का रूप, आकार, वैचित्र्य, सम्मात्रा, सुकुमारता, स्पष्टता, सजीविता, संतुलन, समन्वय, उदात्तता और स्निग्धता आदि। वह सौंदर्य को वस्तु के इन गुणों में ही देखते हैं। पाश्चात्य विद्वान अरस्तु, सुकरात, बेन, डार्विन, लेसिंग, टयूकर, जेफ्रे, होगार्थ, गेरार्ड, स्पेंसर, बर्क, पीयर, बफियर, शेन्सटन, डिडेरो, हेमिल्टन, रेनाल्डस, एलिसन, केमे और रिचर्ड प्राईस आदि वस्तुवादी विचारक ही हैं। होगार्थ ने सम्मात्रा (Symmetry), स्पष्टता (Distinctness), वैचित्र्य (Variety) और दुरुहता व आयतन (Quantity or magnitude) आदि गुणों में सौंदर्य की सत्ता स्वीकार की है।[२०] इसी प्रकार से रस्किन सौंदर्य के दर्शन अनन्तता (Infinity), एकता (Unity), स्थिरता (Repose), सम्मात्रा (Symmetry) आदि गुणों में करता है।[२१] लेसिंग भी सामंजस्य, सुडौलता, व्यवस्थित क्रम, विभिन्नता और अनुपात में सौंदर्य की अवस्थिति मानते हैं। आई० ए० रिचर्डस भी एकरूपता, वैचित्र्य, व्यवस्थित क्रम तथा सम्मात्रा आदि गुणों में सौन्दर्य का अस्तित्व स्वीकार करते हैं।

पाश्चात्य विद्वानों के अतिरिक्त कुछ भारतीय चिंतकों ने भी सौंदर्य की वस्तुगत सत्ता स्वीकार की है। आचार्य क्षेमेन्द्र औचित्य को ही सौंदर्य का मूल तत्व स्वीकार करते हैं। रूप गोस्वामी का मत है कि यथोचित सन्निवेश, ही सौंदर्य

का आधार है । इसी प्रकार आचार्य शंकुक और भट्टलोल्लट भी वस्तुवादी विचारक ही हैं ।

आत्मवादी विचारक :

दूसरा वर्ग उन विचारकों का है जो सौंदर्य को आत्मा से सम्बंधित मानते हैं तथा वस्तु को गौण स्थान देते हैं । इन्होंने सौंदर्य को बाह्य नहीं अपितु आन्तरिक वस्तु माना है । यह विचारक ईश्वर को लेकर भी सौंदर्य की व्याख्या करते हैं । इन्होंने ईश्वर को ही सौंदर्य माना है । इनके मतानुसार जहाँ- जहाँ भी ईश्वर का प्रकाश है वहीं सौन्दर्य है । कोई भी वस्तु इसलिए सुन्दर है क्योंकि उसमें ईश्वर ही प्रकाशित हो रहा है ।[22] अनेक पाश्चात्य विचारक इस वर्ग के अन्तर्गत आ जाते हैं जैसे- क्रोचे, रीड, लोज, प्लेटो, हरबर्ट, हीगैल, सैंट आगस्टाइन, बामगार्टन, प्लोटिनस, काण्ट, शापनहावर और जाफ्राय आदि । जाफ्राय ने सौंदर्य और ईश्वर को एक माना है । उन्होंने सुन्दर और स्वार्थभावना में किसी प्रकार का सम्बंध स्वीकार नहीं किया । उनका कहना है कि उसके द्वारा प्राप्त आनन्द निष्काम आनन्द होता है रीड ने भी सौंदर्य को ईश्वरीय शक्ति माना है । कांट और हरबर्ट भी सौंदर्य को मानसिक वृत्ति मानते हैं । कालरिज ने भी सौंदर्य की मानसिक सत्ता को ही स्वीकार किया है । वह कवि के मन और बाह्य जगत् के सम्मिलन में ही सौंदर्य का अस्तित्व मानते हैं । सैंट आगस्टाइन और एेक्विनस ने भी सौंदर्य को ईश्वरीय तत्व माना है ।

भारतीय चिंतकों ने तो सौंदर्य की अध्यात्मवादी व्याख्या ही की है । डॉ० रामेश्वरलाल खण्डेलवाल लिखते हैं -"भारत की अध्यात्मिक दृष्टि से शताब्दियों से प्रसिद्ध है और शीर्षस्थानीय रही है । भारत में जब भी किसी वस्तु या विषय पर तात्विक चर्चा हुई है तो भारतीय वेदान्त, जो एकान्त आत्मपरक दर्शन है किसी भी रूप में विस्मृत नही हुआ । भारत में सौन्दर्य की चिन्ता मुख्यत: अध्यात्म

की भूमि पर ही हुई है। भक्ति मार्ग में (जहाँ रूप और गुणों का निरूपण सगुण की भूमि पर हुआ है) भी आत्मा की विशद् भूमिका ही ग्रहण की गई है। काव्य और कलाओं के सौंदर्य के सन्दर्भ में उसी ब्रह्म का आधार लिया गया है जिसके तीन रूप हैं सत्, चित् व आनन्द। सौंदर्य का सम्बंध मुख्यत: आनन्द से ही है। स्पष्ट है कि सौंदर्य की व्याख्या में आनन्द स्वरूप किसी भी प्रकार उपेक्षित या विस्मृत नहीं किया जा सकता था। इस प्रकार भारतीय सौन्दर्य चिन्ता नि:शेषत: आत्मवाद से ही अनुप्राणित रही।"[२३]

परमानन्द जी के मतानुसार "स्वतंत्रता और सौंदर्य विवेकिनी शक्ति का सौंदर्य है। वह सौंदर्य बाह्य पदार्थों में नहीं, प्रत्युत् हमारे आत्मा में विद्यमान है। -------हमारा आत्मा सौंदर्य विवेकिनी शक्ति के रूप में पदार्थों को सुन्दर बनाता है। ----------सौंदर्य बुद्धि उस द्वैत का नाश कर देती है जो ज्ञान और कर्म की अवस्था में विद्यमान रहती है ------- तर्क से हम परमात्मा का चिन्तन कर सकते हैं और सौंदर्य हमें साक्षात् ब्रह्म का दर्शन कराता है।"[२४] शंकराचार्य भी सौंदर्य को अध्यात्मिक ही मानते हैं। रसवादी आचार्यों ने भी सौंदर्य को आत्मगत ही माना है परन्तु उन्होंनें आलम्बन अथवा वस्तु की पूर्णतया अवहेलना नहीं की।

इस प्रकार से भारतीय सौन्दर्य चिन्तन आत्मवाद से ही ओतप्रोत रहा है।

समन्वयवादी विचारक :

कुछ विद्वानों ने वस्तु के बाह्य रूपाकार में सौंदर्य की खोज की है तो कुछ विद्वान सौंदर्य को आत्मा से सम्बंधित मानते हैं। उनका मत है कि सौंदर्य बाह्य नहीं आन्तरिक वस्तु है। परन्तु इन दोनों के अतिरिक्त एक तीसरा वर्ग उन सौंदर्यशास्त्रियों का है जिन्होंनें सौंदर्य को रूप एवं मानस से ही सम्बंधित माना है।

उन्होंने सौंदर्य को वस्तुगत भी माना और व्यक्तिगत भी । पाश्चात्य विद्वान प्लैटो, हीगेल, बोसांके और टाल्सटाय आदि इसी वर्ग में आ जाते हैं ।

सौंदर्य के सम्बंध में भारतीय विद्वानों की दृष्टि समन्वयवादी भी रही है । कुमारस्वामी, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, बाबू गुलाबराय, हरिवंश सिंह शास्त्री, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, हरद्वारीलाल शर्मा आदि विद्वानों ने सौंदर्य के सम्बंध में समन्वयवादी विचार ही व्यक्त किए हैं ।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने सौंदर्य के लिए बाहर और भीतर के झगड़े को पश्चिमी सौंदर्य चिन्ता का गड़बड़ झाला बताया है । उन्होंने सौंदर्य की सत्ता बाह्य एवं अन्तर के सामंजस्य में ही स्वीकार की है ।[२५]

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने सौंदर्य को सामंजस्य में समाहित माना है ।[२६]

डॉ० फतहसिंह भी समन्वयवादी विचारक ही हैं ।

अन्त में संक्षेप में कह सकते हैं कि वस्तु के पक्ष में सौंदर्य यदि बाह्य रूपाकार की समुचित संयोजना है तो व्यक्ति के पक्ष में वह एक आनन्दमयी अनुभूति है ।

सौंदर्य का वर्गीकरण :

विभिन्न विद्वानों ने सौंदर्य के विभिन्न भेद प्रस्तुत किए हैं - पीअर एण्ड्रे ने सौंदर्य के तीन भेद किए हैं - (१) दिव्य सौंदर्य (२) प्राकृतिक सौंदर्य (३) कृत्रिम सौंदर्य ।[२७] एडम मुलर ने सौंदर्य के दो भेद किए हैं - (१) सामान्य तथा (२) व्यक्तिगत सौंदर्य ।[२८] विकलमैन सौंदर्य को निम्न प्रकारों में विभाजित करते हैं -(१) रूप सौंदर्य (२) विचार या प्रत्यय का सौंदर्य (३) अभिव्यक्ति का सौंदर्य ।[२९] दिव्य सौंदर्य- संसार के कण-कण में अनुपम सौंदर्य सुधा भर देनेवाले

ईश्वर का सौंदर्य तो बहुत ही श्रेष्ठ होता है । मनुष्य एक चिन्तनशील प्राणी है । प्रकृति सौंदर्य से प्रभावित होकर ही, वह परिष्कृत मन को साथ लेकर प्रकृति सौंदर्य दर्शन के लिए कारणभूत ईश्वर के दिव्य सौंदर्य दर्शन के रास्ते पर सतत-गतिशील रहता है । प्रकृति सौंदर्य से प्रेम करने वाला मनुष्य दिव्य सौंदर्य के प्रति श्रद्धा-भक्ति प्रकट करने लगता है । भक्ति के रंग में रंगा हुआ भक्त अपने तन-मन से, यहां तक कि जीवन के कण-कण से क्षण- क्षण अपने आराध्य देव के दिव्य सौंदर्य का सेवन करता है । यही दिव्य सौंदर्य है । अभिव्यक्ति का सौन्दर्य - अनुभूति अभिव्यक्त होकर ही सुन्दर बनती है । सौंदर्य रूप पर आधारित होता है । सौंदर्य की शोभा को बढाने के लिए अनुभूति का अभिव्यक्त होना आवश्यक है । अभिव्यक्ति के क्षेत्र में कलात्मकता का विशिष्ट स्थान होता है । रस, अलंकार, कल्पना, भाषा, छन्द, शैली आदि उपकरण सुन्दर अभिव्यक्ति के अभिन्न अंग हैं । डॉ० रामेश्वर खण्डेलवाल ने सौंदर्य को चार वर्गों में बांटा है । (१) मानवीय सौंदर्य (२) प्राकृतिक सौन्दर्य (३) वस्तुगत सौंदर्य (४) कलागत सौंदर्य ।[30] ~~(१)~~ मानवीय सौंदर्य ~~को दो वर्गों में~~ - सौंदर्य वर्णन में मानवीय सौंदर्य का विशेष महत्त्व है । मानवीय सौंदर्य को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है - नारी सौंदर्य(२) पुरुष सौंदर्य । नारी सौंदर्य - नारी सौंदर्य ने तो सभी कवियों को विशेष रूप से आकर्षित किया है । यही कारण है कि पुरुष की अपेक्षा नारी सौंदर्य का चित्रण अधिक हुआ है । नारी सौंदर्य के अंतर्गत कवि नारी के बाह्य और आन्तरिक दोनों ही सौंदर्य रूपों का वर्णन करता है । नारी के बाह्य रूप सौंदर्य के चित्रण के लिए नखशिख परंपरा विशेषरूप से प्रचलित रही है । केश, मुख, चक्षु, कपोल, भृकुटी, नाक, अधर, दांत और कर बाह्य सौंदर्य के अंतर्गत आते हैं । दया, माया, ममता, करुणा, सेवा, त्याग, समर्पण, सहानुभूति और प्रेम उसके आन्तरिक गुण हैं, जो नारी के सौंदर्य को और भी बढ़ा देते हैं। कवियों की दृष्टि नारी के यौवन के अतिरिक्त उसे मातृ रूप के सौन्दर्य पर भी गयी है । पुरुष सौन्दर्य - साहित्य -------------

THE SHRI HANSA MEHTA LIBRARY

में नारी सौंदर्य के साथ-साथ पुरुष सौंदर्य का भी चित्रण हुआ है। नारी और पुरुष के रूप सौंदर्य में पर्याप्त भिन्नता है। पुरुष का शरीर सुगठित, हृष्ट-पुष्ट और लम्बा-चौड़ा होने पर ही आकर्षक लगता है। उसमें स्फूर्ति, उत्साह, पौरुष, तेज, शक्ति और आत्मिकबल आदि आन्तरिक गुण भी हो तो उसका व्यक्तित्व और भी आकर्षित लगता है। पुरुष का रूप सौंदर्य मुख्यतया व्यक्तित्व पर ही आधारित होता है। सृष्टि के रक्षण का भार पुरुष के कंधों पर ही है। पुरुष को नारी का रक्षक माना जाता है। इतिहास इसका साक्षी है कि स्त्रियों के सतीत्व की रक्षा के लिए वीरों ने खून की नदियाँ बहा दी। आत्मसम्मान की भावना भी पुरुष में बहुत प्रबल होती है। वह दूसरों के सहारे जीवन व्यतीत करने की अपेक्षा मृत्यु को बेहतर मानता है। (२) प्राकृतिक सौंदर्य - प्रकृति मनुष्य की सहचरी है। प्रकृति सौंदर्य ने तो मनुष्य को विशेष रूप से प्रभावित किया है। प्रकृति की क्रोड़ में खेलते हुए मानव को प्रकृति सदा काव्य रचना करने में प्रवृत्त करती रही है। प्रकृति सौंदर्य के अंतर्गत कवि पर्वत, सागर, झरना, लहर, उषा, संध्या, रात्रि, चन्द्रमा, तारा, सूर्य, किरण और विभिन्न ऋतुओं, पशु-पक्षियों का चित्रण और विभिन्न प्रकार के फूलों के सौंदर्य को अंकित करता है। उसके केवल कोमल रूप का ही नहीं अपितु उसके भयानक एवं कठोर रूप का भी चित्रण करता है। (३) वस्तुगत सौंदर्य- इस सौंदर्य के अंतर्गत मनुष्य द्वारा बनाये गये विभिन्न पदार्थों का सौंदर्य आता है। चूना, मिट्टी, पत्थर और लकड़ी से मनुष्य विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का निर्माण करता है। (४) कलागत सौंदर्य - इस सौंदर्य के विषय में डॉ० रामेश्वरलाल खण्डेलवाल लिखते हैं -' कलागत सौंदर्य से अभिप्राय उस सौंदर्य से है जो वस्तु जगत् के पदार्थों, घटना-व्यापारों व पात्रों आदि को कवि कल्पना की सहायता से साहित्य में प्रस्तुत किए जाने पर भावक या पाठक के मन में उसकी ग्राहक कल्पना के द्वारा उत्पन्न होता है।'[३१]

कल्पना का अर्थ-स्वरूप और परिभाषा ::

सौंदर्यशास्त्र के तत्वों में कल्पना का विशिष्ट स्थान है। इसके द्वारा ही कवि मधुर जगत् की सृष्टि करने में सफल होता है। डॉ० भगीरथ मिश्र इस कल्पना तत्व के विषय में लिखते हैं -`कल्पना-तत्त्व का काव्य में विशिष्ट और महत्वपूर्ण कार्य होता है। वह जीवन के विविध दृश्यों और रूपों को हमारे सामने प्रस्तुत करता है। किसी वस्तु, घटना, चरित्र, भाव, विचार आदि को साकार, सजीव रूप में अंकित करना कल्पना का ही काम है। कविता में जो बिंब-योजना होती है, वह कल्पना का ही प्रसाद है। इसके द्वारा कवि अतीत को वर्तमान रूप में प्रस्तुत करता है। दूरस्थ व्यक्ति और वस्तु को आँखों के सामने रखता है। काव्य के अंतर्गत जो जीवन और सत्य का प्रत्यक्षीकरण होता है, वह कल्पना के माध्यम से ही होता है। कल्पना के माध्यम से जो चित्र प्रस्तुत किए जाते हैं, वे भावों को प्रेरणा देते हैं, साथ ही विचारों को भी उत्तेजित करते हैं। किन्तु वस्तु, व्यक्ति अथवा घटना की सूक्ष्म विशेषताओं और बारीकियों को तथा अनुभूति की जटिलताओं को कल्पना की सहायता, बिना प्रकट नहीं किया जा सकता।`[३२] कल्पना संस्कृत के `क्लृप` धातु से बना है जिसका अर्थ है `मानसिक सृष्टि करना`। इस प्रकार से कल्पना वह शक्ति है जिसके द्वारा हम अप्रत्यक्ष वस्तुओं का मानसिक चित्र खड़ा करते हैं। कल्पना अंग्रेजी के इमैजिनेशन( Imagination ) शब्द का समानार्थी माना जाता है, जो कि `इमेज` से बना है। जिसका अर्थ भी मानसिक चित्र ही है। आधुनिक युग में कल्पना का प्रयोग इसी अर्थ में होता है। आक्सफोर्ड डिक्शनरी में इमैजिनेशन का अर्थ है `वह मानसिक क्रिया जिससे उन बाह्य वस्तुओं के बिंब का निर्माण होता है जो इन्द्रियों के सामने उपस्थित नहीं रहती, मस्तिष्क की रचनात्मक शक्ति।[३३]

हिन्दी साहित्य कोष में कल्पना की परिभाषा इस प्रकार से दी गयी

है ` पूर्व अनुभूतियों की पुनर्योजना से अपूर्व की अनुभूति उत्पन्न करने की क्रिया या शक्ति को कल्पना कहते हैं ।[34] प्राचीन भारतीय काव्यशास्त्र और संस्कृत साहित्य में कल्पना शब्द का बहुत ही कम उल्लेख देखने को मिलता है । अगर कहीं मिल भी जाता है तो उसका अर्थ सर्वथा भिन्न होता है जैसे संस्कृत में उसका प्रयोग मिथ्या ज्ञान के लिए किया गया है, और कहीं इसका प्रयोग `सिद्धि` और `हाथी को सजाने ` के अर्थ में हुआ है । इसके अतिरिक्त इसके लिए अनेक शब्दों का प्रयोग किया गया है । सबसे प्रचलित शब्द `प्रतिभा` है । प्रतिभा का कोशगत अर्थ है झटिति विषय- ग्राहिणी बुद्धि, असाधारण मानसिक शक्ति । अंग्रेजी में `प्रतिभा` का पर्यायवाची शब्द `जीनियस` है । अनेक विचारकों ने जीनियस को कल्पना के अर्थ में स्वीकार किया है । `प्रतिभा` शब्द इमेजिनेशन के मूल अर्थ की व्यंजना करता है । पाश्चात्य चिन्तन परंपरा में जो स्थान कल्पना को प्राप्त है भारतीय काव्यशास्त्र में वही स्थान `प्रतिभा` का है । डॉ० कुमार विमल के मतानुसार -`आधुनिक सौंदर्यशास्त्र या पाश्चात्य कला चिन्ता की `कल्पना` को हम भारतीय काव्यशास्त्र की `प्रतिभा` कह सकते हैं ।`[35]

मनोविज्ञान में भी कल्पना का विवेचन किया गया है । परन्तु मनोविज्ञान की कल्पना काव्य कल्पना से भिन्न प्रकार की है । मनोविज्ञान की कल्पना में स्थान, आसंग और गुण-निबंधन को विशेष महत्व दिया जाता है । इसके अतिरिक्त अनुमान, दिवास्वप्न, स्वप्न, विभ्रम, भ्रम और स्मृति सबका समावेश कल्पना के क्षेत्र में हो जाता है । डॉ० ब्रिजरानी भार्गव के मतानुसार-`मनोविज्ञान की कल्पना कला साहित्य की कल्पना से भिन्न मानी गयी है । वहाँ इसे एक मन:शक्ति के रूप में माना जाता रहा है, जिसका कार्य-क्षेत्र स्मृति और बुद्धि के मध्य में होता है । इस प्रसंग में इन्द्रिय ज्ञान, संवेदनाएँ तथा उनके संयोग को विशेष महत्व दिया गया है ।`[36]

मनोवैज्ञानिकों ने कल्पना के दो प्रकार माने हैं --

(१) पुनरभिव्यंजक कल्पना

(२) रचनात्मक कल्पना

रचनात्मक कल्पना के दो भेद हैं -

(१) ग्रहणात्मक कल्पना

(२) आविष्कारात्मक कल्पना

इस आविष्कारात्मक कल्पना के भी तीन भेद हैं -

(१) अर्थ क्रियात्मक कल्पना

(२) सौंदर्य बोधात्मक कल्पना

(३) मनोराज्यात्मक कल्पना ।

कल्पना के स्वरूप को अच्छी तरह से समझने के लिए विभिन्न विद्वानों के कल्पना सम्बंधी दिये गये विचारों पर चर्चा कर लेना उचित रहेगा ।

कल्पना की परिभाषा :

पाश्चात्य विद्वान -

पाश्चात्य साहित्य में तो कल्पना पर विशाल चर्चा हुई है । प्लेटो से लेकर कालरिज तक के विद्वानों की लम्बी परंपरा है जिन्होंने इस शब्द को परिभाषित किया है । कुछ विद्वानों की परिभाषाएँ प्रस्तुत हैं । प्रारंभिक विचारक प्लेटो असत्य को कल्पना का आधार मानते हैं । उनके विचारानुसार कल्पना एक अवर अलीक सर्जन का साधन है ।[३७] एडीसन ने कल्पना को मन की एक स्वतंत्र शक्ति के रूप में स्वीकार किया ।[३८] शेक्सपीयर ने भी कल्पना के सम्बंध में अपने विचार प्रस्तुत किए हैं । उनके अनुसार 'कवि की दृष्टि उल्लास से भरकर पृथ्वी से स्वर्ग और स्वर्ग से पृथ्वी तक घूमती है । जैसे- जैसे कल्पना स्फुरित होती है वैसे-वैसे कवि की लेखनी जिनका अस्तित्व तक नहीं वैसे अलक्ष्यों को लक्ष्य कर उन्हें नाम-रूप देती है ।'[३९] शैली ने कल्पना को 'काव्य की अभिव्यक्ति' माना है ।[४०] ब्लेक कल्पना को ऐसी मानसिक शक्ति मानता था जो किसी को पूर्ण कवि बनाने

के लिए पर्याप्त है।[४१] कॉलरिज के अनुसार 'कल्पना सभी मानवीय अनुभूतियों की सजीव शक्ति तथा मुख्य स्त्रोत है, इसे मानव के सीमित मस्तिष्क में शाश्वत सृष्टि के अनन्त कार्य की पुनरावृत्ति कहा जा सकता है।'[४२] ड्राइडन के मतानुसार कल्पना ऐसी शक्ति है, जो एक तेज शिकारी कुत्ते की तरह स्मृति- क्षेत्र पर ऐसे भावों की खोज में दौड़ मारती है जिनके द्वारा वह अनुभूतियों को अच्छी तरह प्रदर्शित कर सके।[४३] गुरे का विचार है कि कल्पना ऐसी मानसिक शक्ति है जो मन के द्वारा चित्रों का निर्माण करती है।[४४] इसी प्रकार सोल्जेर का मत है कि कल्पना के सहारे ही विश्व के मूल भाव(Fundamental idea)तक की ऊँचाई तक पहुँचा जा सकता है।[४५]

भारतीय विद्वान ::

भारतीय विद्वानों ने भी कल्पना के सम्बंध में अपने विचार प्रस्तुत किए हैं। जैसे कि पहले भी कहा जा चुका है कि संस्कृत साहित्य में कल्पना का पर्यायवाची शब्द 'प्रतिभा' का इसी अर्थ में प्रयोग किया गया है। संस्कृत आचार्यों ने भी प्रतिभा को काव्य का एक महत्वपूर्ण तत्व मानते हुए इसकी व्याख्या प्रस्तुत की है। भामह ने काव्य हेतुओं में 'प्रतिभा' को सबसे श्रेष्ठ माना है। उनका मत है कि प्रतिभा के बिना गुरु उपदेश भी कार्य नहीं करते।[४६] भट्टतौत ने 'नवनवोन्मेषशालिनी' प्रज्ञा को ही प्रतिभा कहा है।[४७] आचार्य कुन्तक प्रतिभा का सम्बंध पूर्व जन्म से जोड़ते हुए प्रतिभा को शब्द और अर्थ में चमत्कार लानेवाली शक्ति के नाम से संबोधित करते हैं।[४८] पंडितराज जगन्नाथ ने प्रतिभा को काव्य निर्माण का कारण माना है। उनका मत है कि काव्य घटना के अनुकूल शब्द और अर्थ की उपस्थिति प्रतिभा ही कराती है।[४९]

संस्कृत आचार्यों के अतिरिक्त हिन्दी के विद्वानों ने भी कल्पना पर अपने विचार प्रस्तुत किए हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कल्पना पर विशाल चर्चा की है।

उन्होंनें कल्पना को उपासना अथवा भावना के समान माना है । उनके विचार से 'जो वस्तु हमसे अलग है, हमसे दूर प्रतीत होती है उसकी मूर्ति मन में लाकर उसके सामीप्य का अनुभव करना ही उपासना है । साहित्य वाले इसे भावना कहते हैं और आजकल के लोग कल्पना । जिस प्रकार भक्ति के लिए उपासना या ध्यान की आवश्यकता होती है उसी प्रकार भावों के प्रवर्तन के लिए भावना या कल्पना की आवश्यकता होती है ।'[५०] बाबू श्यामसुन्दरदास के शब्दों में 'विज्ञान में जो बुद्धि है और दर्शन में जो दृष्टि है, वही कविता में कल्पना है ।'[५१] डॉ० नगेन्द्र के विचार से 'कल्पना उस शक्ति का नाम है जो पहले कवि को वर्ण्य-विषय का मन सा साक्षात्कार कराती है और फिर भाषा में चित्रात्मकता का समावेश कर श्रोता के मन : चक्षु के सामने भी उसे प्रत्यक्ष कर देती है ।'[५२] डॉ० विनोद-नारायण सिन्हा का मत है कि 'कल्पना प्रत्यक्ष बोध तथा अमूर्त प्रत्ययों का मिलाप करती है । प्रत्यक्ष बोध में अनुभूति का जन्म होता है । प्रत्यक्ष बोध को बिंबों को बाँधकर कल्पना अनुभूति को स्थिरता प्रदान करती है और चेतन मन का चयन- विवेक भी इस अनुभूति तत्व को नष्ट नहीं कर पाता । काव्य-सर्जक कल्पना में प्रत्यक्ष बोध और प्रत्यात्मक विचार शक्ति में पार्थक्य नहीं होता"।[५३] पंत जी के अनुसार-' मैं कल्पना को सबसे बड़ा सत्य मानता हूँ । मेरी कल्पना को जिन-जिन विचारधाराओं से प्रेरणा मिली है उन सबका समीकरण करने की चेष्टा मैंने की है । मेरा विचार है कि वीणा से लेकर ग्राम्या तक अपनी सभी रचनाओं में मैंने कल्पना को ही वाणी दी है और उसी का प्रभाव उन पर मुख्य रहा है ।'[५४] पंडित रामदहिन मिश्र के शब्दों में ' अनुपस्थित वस्तु की मानस-प्रतिमा खड़ी करने की शक्ति का नाम कल्पना है । कल्पना मन की एक विशिष्ट शक्ति है । कल्पना कवि को असत् से सत् की सृष्टि करने में समर्थ बनाती है ।'[५५] डॉ० गणपतिचन्द्र गुप्त लिखते हैं 'कल्पना एक ऐसी मानसिक शक्ति है, जो कि अप्रत्यक्ष वस्तुओं के रूप- गुणों का प्रत्यक्षीकरण करवाती हुई उन्हें नूतन

रूप में प्रस्तुत करने की क्षमता से युक्त है।"[56] डॉ० रामखेलावन पाण्डेय के मतानुसार "कल्पना पूर्व- अनुभवों एवं निर्विकल्प प्रत्यक्ष ज्ञान का आधार छोड़ नहीं सकती, अत: कल्पना निराधार एवं व्योम-कुंजों की परी है, ऐसा समझना भ्रमात्मक है। पूर्व निर्विकल्प प्रत्यक्ष ज्ञान के अभाव में न तो जन्मान्ध इन्द्रधनुष के रंगों की कल्पना कर सकता है और न जन्म का बहरा संगीत के सौंदर्य की।"[57]

कल्पना की विविध परिभाषाओं का अनुशीलन करने के पश्चात् कह सकते हैं कल्पना कवि की एक सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि है जो काव्य के भावोद्रेक में सहायक होकर नवीन सृष्टि करने के साथ उसमें सार्वभौमिक सत्य एवं सौंदर्य का समावेश भी करती है।

कल्पना और फैंसी में अन्तर :

कल्पना और फैंसी में पर्याप्त अन्तर है। फैंसी का सम्बंध मस्तिष्क से अधिक होता है और वह हमारी प्रकृति के ऐहिक अंश को प्रभावित करती है जबकि कल्पना का सम्बंध आत्मा व मन से होता है। वह पाठक के प्रकृति के शाश्वत अंश को अनुप्रेरित करती है। कल्पना में भावना और स्मृति की प्रधानता रहती है परन्तु फैंसी में इसका स्थान गौण होता है। कल्पना में बोध और प्रतिबोध दोनों विद्यमान रहते हैं, परन्तु फैंसी में केवल बोध ही उपस्थित रहता है। कॉलरिज दोनों के अन्तर को इस प्रकार से स्पष्ट करते हैं -"कल्पना ऐसी शक्ति है जो भावों का सामंजस्य स्थापित करके उनका एकीकरण करती है। विकल्पना का कार्य इससे भिन्न इसलिए ~~होता~~ है कि उसका कार्य कुछ निश्चित, नियत और स्थिर वस्तुओं के साथ खेलने का है, जो देशकाल से मुक्त स्मृति का ही एक प्रकार है।"[58] एमरसन लिखते हैं-"फैंसी का सम्बंध रंगों से होता है जबकि कल्पना का सम्बंध रूप से है।[59] डॉ० कुमार विमल के शब्दों में "कल्पना के बिम्ब जहाँ इकहरे, विशिष्ट और आशु होते हैं, वहाँ फैंसी के बिम्ब स्थिर और चाकचिक्य से भरे होते हैं। पुन: कल्पना

के दो तत्वों की आत्यन्तिक आवश्यकता रहती है - भावना एवं स्मृति की। किन्तु फैंसी में स्मृति का अंश नगण्य रहता है और भावना रहती भी है तो आवेश-युक्त एवं तत्पर नहीं ; शिथिल और निर्बल।[60] इसके अतिरिक्त कल्पना गतिशील होती है इसका सम्बंध गतिशील पदार्थों से होता है परन्तु फैंसी स्थिर होती है इसका सम्बंध स्थिर जड़ पदार्थों से होता है।

कल्पना का वर्गीकरण :

यद्यपि कल्पना का कोई निश्चित वर्गीकरण नहीं किया जा सकता तथापि विभिन्न विद्वानों ने कल्पना को भिन्न-भिन्न प्रकार से वर्गीकृत किया है। प्रसिद्ध पश्चिमी विद्वान प्लोटाइनस ने कल्पना के दो भेद माने हैं (१) ऐंद्रिय कल्पना (२) बौद्धिक कल्पना। ऐन्द्रिय कल्पना विमर्शशून्य(Irrational) आत्मा पर बाह्य वस्तु जनित समाघात(Impact) मात्र है। इसका सम्बंध विमर्शशून्य आत्मा के साथ है। दूसरी प्रकार की बौद्धिक कल्पना का सम्बंध विमर्श युक्त आत्मा के साथ है। यह कल्पना बौद्धिक एवं शुद्धात्मा सम्बंधी तात्विक विचारों (Conception)को उचित रूपों में परिवेष्ठित करती है। जो प्रत्यक्षणीय तथा शरीरयुक्त है उसका भी शुद्धात्मीकरण यह कल्पना कर सकती है।[61] कालरिज ने कल्पना के दो प्रकार माने हैं (१) प्राथमिक कल्पना(Primary Imagination) (२) गौण कल्पना (Secondary Imagination) प्राथमिक कल्पना हमें वस्तुओं का प्राथमिक ज्ञान प्राप्त कराती है। उनका मत है कि प्रत्यक्ष जगत में हम जो कुछ देखते-सुनते हैं उससे मन में अनेक भाव-तरंगें उठती हैं। मन इनको समवेत करके चित्रों के रूप में परिणत कर लेता है। यही प्राथमिक कल्पना है। दूसरी प्रकार की गौण कल्पना काव्य सर्जना में कवि की सहायता करती है। यह दो परस्पर विरोधी तत्वों में सन्तुलन करती है। जर्मन के प्रसिद्ध विद्वान काण्ट ने कल्पना के तीन वर्ग किए हैं (१) पुनरूपात्मक कल्पना

(२) उत्पादक कल्पना (३) कलात्मक अथवा स्वतंत्र कल्पना ।[६२] इसी प्रकार से हीगेल के मतानुसार कल्पना के दो प्रकार हैं (१) नूतन रचनात्मक अथवा उत्पादक कल्पना (२) प्रतिरचनात्मक कल्पना ।[६३]

पाश्चात्य विद्वानों के अतिरिक्त भारतीय विद्वानों ने भी कल्पना के वर्गीकरण प्रस्तुत किए हैं - डॉ० रामकुमार वर्मा ने कल्पना के चार वर्ग किए हैं - (१) स्वस्थ कल्पना (२) अतिरंजित कल्पना (३) मानवीकरण प्रेरित कल्पना (४) आदर्श कल्पना । स्वस्थ कल्पना के विषय में वे लिखते हैं कि `स्वस्थ कल्पना कारण और कार्य की श्रृंखला से स्वाभाविकता की सृष्टि करती है और जगत में अन्तर्व्यापी सत्य के समानान्तर प्रवाहित होती है । यह कल्पना-प्रसूत संसार वस्तुत: प्रत्यक्ष संसार का प्रतिरूप ही है अथवा सत्य का दर्पणगत चित्र है । इसके द्वारा स्वानुभूति की परिधि अत्यन्त विस्तृत होकर संसारगत व्यपार-मात्र को समेट लेती है ।`[६४] दूसरी प्रकार की अतिरंजित कल्पना को फँसी कहा जा सकता है । इस प्रकार की कल्पना का सम्बंध परियों की कहानियों अथवा दन्त कथाओं से है जो कल्पना की सहायता से पाठक में कौतुहल को बढ़ाती हैं । तीसरी मानवीकरण-प्रेरित कल्पना के विषय में डॉ० वर्मा लिखते हैं `साहित्य में मानवीकरण की प्रेरणा संवेदना के प्रत्यक्षीकरण के लिए होती है ।`[६५] उन्होंने कल्पना के तीन उद्देश्य माने हैं - विश्व में परिव्याप्त सत्य की निष्ठा, अनुभूतिप्रवणता और चारित्रिक उत्कर्षापकर्ष । चौथी आदर्श कल्पना है । इस कल्पना की सहायता से ही कवि स्वर्णिम भविष्य के चित्र प्रस्तुत करने में सफल होता है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कल्पना के दो भेद किए हैं (१) विधायक कल्पना (२) ग्राहक कल्पना । विधायक कल्पना का सम्बंध कवि से होता है और ग्राहक कल्पना का सम्बंध सहृदय से होता है । रामदहिन मिश्र के मतानुसार कल्पना के तीन प्रकार हैं (१) उत्पादन कल्पना (२) संयोजक कल्पना (३) अवबोधक कल्पना । उत्पादन कल्पना मन की वह निर्माणमयी

वृत्ति है, जो अकिंचित में से भी सब कुछ ला खड़ा कर देती है। दूसरी संयोजक कल्पना एक वस्तु का दूसरी वस्तु से सम्बंध स्थापित करती है। तीसरी अवबोधक कल्पना नये अर्थ की उद्भावना करती है तथा अभूतपूर्व वस्तु का अश्रुतपूर्व सम्बन्ध स्थापित करती है।

बिंब का अर्थ - स्वरूप और परिभाषा :

सौंदर्यशास्त्र के तत्वों में बिंब का विशेष महत्व है। इसका विवेचन मनोविज्ञान, शरीर विज्ञान और दर्शन में भी विस्तार से हुआ है। बिंब का सामान्य अर्थ होता है प्रतिमा, छाया, प्रतिबिम्ब और प्रतिच्छाया। यह अंग्रेजी शब्द 'इमेज' (Image) का पर्याय है। हिन्दी में बिंब का प्रयोग अंग्रेजी के 'इमेज' के आधार पर ही किया जाता है। विभिन्न कोशों में बिंब के विभिन्न अर्थ दिए हैं। शार्टर आक्सफोर्ड डिक्शनरी के अनुसार बिंब का अर्थ है मूर्त रूप प्रदान करना, चित्रबद्ध करना, प्रतिच्छायित करना, प्रतिबिम्बित करना इत्यादि[६६] संस्कृत हिन्दी कोश में इसके अनेक अर्थ दिए गए हैं जैसे सूर्यमंडल, प्रतिभा, छाया, प्रतिबिंब, दर्पण इत्यादि।[६७] चैम्बर्स डिक्शनरी के अनुसार 'कल्पना अथवा स्मृति में उपस्थित चित्र अथवा प्रतिकृति जिसका चाक्षुष होना अनिवार्य नहीं है।'[६८] एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका में बिंब का प्रयोग 'प्रतिच्छाया' के रूप में किया गया है।[६९]

मनोविज्ञान में भी बिंब की पर्याप्त चर्चा हुई है। मनोविज्ञान के अनुसार बिंब किसी पूर्वानुभूत किन्तु तत्काल अनुपस्थित पदार्थ या घटना के गुणों या विशेषताओं के न्यूनाधिकपूर्ण मानसिक प्रत्यंकन-मानस चित्र का नाम है, जिसमें मूल अनुभूति की अतीतता का अभिज्ञान निहित रहता है। यह पूर्व अनुभव की पुनरूद्बुद्धि

है जो मूल के सदृश होने पर भी अनिवार्यता उसकी यथावत् प्रतिकृति नहीं होती ।[७०]

बिंब के स्वरूप को अच्छी तरह से समझने के लिए विभिन्न विद्वानों की परिभाषाओं पर विचार कर लेना उचित रहेगा ।

बिंब की परिभाषा ::

अनेक भारतीय तथा विदेशी विचारकों ने बिंब का विवेचनात्मक अध्ययन किया है । कुछ विद्वानों की परिभाषायें प्रस्तुत हैं - सुजान के० लैंगर के अनुसार 'बिंब ऐन्द्रिक अनुभव द्वारा आध्यात्मिक एवं मानसिक सत्यों तक पहुँचने का मार्ग है ।'[७१] सी० डे० लीविस की धारणा है कि 'काव्य बिंब न्यूनाधिक परिमाण में ऐन्द्रियता के तत्व से समंजित; कुछ अंशों में अलंकृत, शब्द चित्र हैं जिसके सन्दर्भ में किसी मानवीय संवेदना की अन्तर्ध्वनि रहती है तथा जो एक विशिष्ट काव्यात्मक भाव या राग से गर्भित होने के साथ वैसी ही रागात्मक अनुभूति पाठकों में उद्दीप्त कर सकता है ।'[७२] रिचर्ड्स के विचारानुसार 'बिंब एक दृश्यचित्र, संवेदना की एक अनुकृति, एक विचार, एक मानसिक घटना, एक अलंकार अथवा दो भिन्न अनुभूतियों के तनाव से बनी एक भाव स्थिति कुछ भी हो सकता है ।'[७३] कुम्बे ने बिंब को एक प्रकार का 'फिगर आफ स्पीच' माना है ।[७४] जार्ज ह्वेली के मतानुसार 'बिंब एक अमूर्त विचार अथवा 'भावना' की पुनर्रचना है ।'[७५] एज़रा-पाउण्ड के विचारानुसार 'बिंब सृष्टि का मूल प्रेरक कारण है बौद्धिक और भावात्मक मनोग्रंथि ।'[७६] हीगेल का मत है 'बिंब उपमा और रूपक का मध्यवर्ती है अर्थात् उसका इन दोनों से घनिष्ठ सम्बंध है ।'[७७]

भारतीय विचारक :

डॉ० नगेन्द्र के अनुसार 'बिंब एक प्रकार का चित्र है जो किसी पदार्थ

के साथ विभिन्न इन्द्रियों के सन्निकर्ष से प्रमाता के चित्त में उद्बुद्ध हो जाता है।`[७८] डॉ० कुमार विमल के विचार से `बिंब विधान कला का क्रिया पक्ष है जो कल्पना से उत्थित होता है। कला जगत में कल्पना के विकास की एक सरणि है, कल्पना से बिंब का आविर्भाव होता है, बिंबों से प्रतीक का।`[७९] महाकवि सुमित्रानंदन पन्त ने पल्लव की भूमिका में बिंब के सम्बंध में लिखा है - `कविता के लिए चित्र भाषा की आवश्यकता पड़ती है उसके शब्द सस्वर होने चाहिए, जो बोलते हो, सेव की तरह जिनके रस की मधुर लालिमा भीतर न समा सकने के कारण बाहर झलक पड़े, जो अपने भाव को अपनी ही ध्वनि में आँखों के सामने चित्रित कर सके, जो झंकार में चित्र और चित्र में झंकार हो-------।`[८०] दिनकर जी का मत है कि `कविता और कुछ करे या न करे, किन्तु चित्रों की रचना वह अवश्य करती है और जिस कविता के भीतर बनाने वाला चित्र जितने ही स्वच्छ या विभिन्न इन्द्रियों से स्पष्ट अनुभूत होने योग्य होते हैं, वह उतने ही सफल और सुन्दर होते हैं।`[८१] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के विचारानुसार `बिंब ग्रहण वहीं होता है जहाँ कवि अपने सूक्ष्म निरीक्षण द्वारा वस्तुओं के अंग- प्रत्यंग, वर्ण आकृति तथा उनके आस-पास की परिस्थिति का परस्पर संश्लिष्ट विवरण देता है।`[८२]

संक्षेप में कह सकते हैं कि बिंब एक प्रकार का मानसिक चित्र है। ऐन्द्रियता और चित्रात्मकता इसकी प्रमुख विशेषताएँ हैं।

बिंब और रूपक में अन्तर ::

बिंब और रूपक में अन्तर है। डॉ० प्रतिभा कृष्णाबल दोनों के अन्तर के विषय में लिखती हैं कि-` प्रत्येक बिंब वर्ण्य को इस रूप में प्रस्तुत करता है कि वह उसका समग्र रूप किसी विशिष्ट इन्द्रिय के बोध के आधार पर चेतना में प्रत्यक्ष

कर सके, लेकिन उपमा, रूपक का कर्तव्य कर्म केवल सादृश्य : कथन मात्र है, सादृश्य के आधार पर वर्ण्य का मानस- प्रत्यक्षीकरण नहीं ।'[८३] ज़ाक मारितें दोनों के अन्तर को इस प्रकार से स्पष्ट करते हैं 'मेटाफर में एक जानी-पहचानी परिचित वस्तु के साथ उसी तरह की दूसरी वस्तु सादृश्य दिखलाया जाता है कि जिसमें पहली को और भी अच्छी तरह से अभिव्यक्त किया जा सके लेकिन बिंब का सादृश्य-साधन बिल्कुल ही तर्कमूलक नहीं होता । एक वस्तु से दूसरी वस्तु को जैसे ढूँढ निकालता है और सादृश्य द्वारा एक अज्ञात वस्तु से परिचित कराता है ।'[८४] इसके अतिरिक्त बिंब स्वच्छन्द होने के कारण अनिवार्यता प्रतीकात्मक होता है परन्तु रूपक के लिए ऐसा होना जरूरी नहीं है ।

बिंब और मिथक में अन्तर :

बिंब और मिथक भी एक दूसरे से भिन्न हैं । सबसे पहला अन्तर यही है कि बिंब का निर्माता एक व्यक्ति होता है, जबकि मिथ का निर्माण संपूर्ण जाति अथवा समूह के द्वारा होता है । इस विषय में डॉ० कुमार विमल लिखते हैं 'मिथ मनुष्य की सामूहिक चेतना की उपज है और बिंब व्यक्ति चेतना की । यह दूसरी बात है कि निर्मित होने के उपरान्त बिंब को भी स्वीकृति के लिए इसी सामूहिक चेतना के पास जाना पड़ता है ।'[८५] बिंब का निर्माण जब एक बार हो जाता है तब वह स्थिर हो जाता है परन्तु मिथ के सीमान्त में हमेशा परिवर्तन होता रहता है । इसके अतिरिक्त बिंब के समान मिथ ऐन्द्रिय और संवेदनक्षम भी नहीं होता । दोनों में एक अन्तर यह भी है कि बिंब को ग्रहण करने के लिए संवेदनशीलता और सह -अनुभूति की आवश्यकता रहती है जबकि मिथक को ग्रहण करने के लिए विश्वास का होना जरूरी है ।

बिंब का वर्गीकरण :

पाश्चात्य तथा भारतीय विचारकों ने अपने- अपने मतानुसार बिंब का

वर्गीकरण प्रस्तुत किया है। पाश्चात्य विद्वान स्केल्टन ने बिंब के अनेक भेद किए हैं जैसे सरल(सिम्पुल), तात्कालिक(इमिजिएट), विकीर्ण (डिफ्यूज), भावनीति(एसट्रेक्सन), अमूर्त (एवसट्रेक्ट), संयुक्त (कम्पाउण्ड), संकुल(कम्पलेक्स), संयुक्त भाववादी(कम्बाइण्ड एव्सट्रेक्ट), संयुक्त अमूर्त (कम्पलेक्स एव्सट्रेक्ट) अमूर्त संयुक्त (एव्सट्रेक्ट कम्पलेक्स कम्बाइण्ड) तथा संकुल (एव्सट्रेक्ट कम्पलेक्स)।[८६] हैनरी वेल्स ने भी बिंब का विशाल वर्गीकरण प्रस्तुत किया है - शोभाधर्मी(डेकोरेटिव), लुप्त(संकेन) उग्र या फास्टियन (वायलेंट), मूलाश्रयी (रेडिकल), तीक्ष्ण या गहन (इन्टेन्सिव), विस्तारधर्मी (एक्सपेन्सिव) तथा समृत (एक्जुरेंट)। कुम्बे ने बिंब के दो प्रकार माने हैं (१) मूर्त बिंब (२) अमूर्त बिंब।

भारतीय विचारकों ने भी अनेकानेक ढंग से बिंब को वर्गीकृत किया है। डॉ० केदारनाथ सिंह ने बिंब के आठ प्रकार माने हैं (१) सज्जात्मक बिंब(२) छायात्मक बिंब (३) घनात्मक बिंब(४) मिश्रित बिंब (५) उदात्त बिंब(६) नाद बिंब (७) अमूर्त बिंब (८) प्रतीकात्मक बिंब। सज्जात्मक बिंब अलंकार के समान काव्य की शोभा बढ़ाते हैं। यह बिंब उपमा, उत्प्रेक्षा और रूपक आदि अलंकारों के रूप में पाये जाते हैं। रीतिकाल के अधिकतर बिंब इस वर्ग के अंतर्गत आ जाते हैं। छायात्मक बिंब वह बिंब है जिसे पढ़ते समय हमारे सम्मुख कोई स्पष्ट मूर्ति या चित्र प्रस्तुत नहीं होता बल्कि एक धुँधला सा भाव ही अन्त:करण में उपस्थित होता है। घनात्मक बिंब के विषय में डॉ० केदारनाथ सिंह लिखते हैं -'इस वर्ग के बिंबों की विशेषता अनुभूति की गहन अभिव्यक्ति और असाधारण कला- कौशल में होती है। एक कवि जब शब्द स्रष्टा की परिधि को अतिक्रान्त करके रेखांकन की सीमा में प्रवेश करता है तो वह घनात्मक बिंब की सृष्टि करता है।'[८७] मिश्रित बिंब में विभिन्न इन्द्रिय बोधों का मिश्रण होता है। उदात्त बिंब में वर्ण्य विषय अपनी भास्वर विशालता या आश्चर्यजनक सूक्ष्मता से दृष्ट की समस्त इन्द्रियों को पराभूत कर

कर देता है। नादबिंब- शब्दों के उच्चारण से उत्पन्न ध्वनि से वस्तु या भाव का एक बिंब उभरता है नाद बिंब कहलाता है। मानस अथवा अन्य ऐन्द्रिय प्रत्यक्ष से रहित भाव को पैदा करने वाले बिंब अमूर्त बिंब कहलाते हैं। प्रतीकात्मक बिंबों को परिभाषित करते हुए डॉ० केदारनाथ सिंह लिखते हैं -'सामान्यत: प्रत्येक सफल बिंब अपनी दृश्य- सत्ता के अतिरिक्त किसी सूक्ष्म भावसत्य की ओर संकेत करता है। सबसे स्थूल बिंब वह है जो पाठक की कल्पना को ऐन्द्रिय बोध के ऊपरी स्तर पर ही उलझाये रखता है। इसीलिए काव्य के श्रेष्ठतम बिंबों में एक प्रकार की प्रतीकात्मकता होती है। काव्यात्मक बिंब में यह प्रतीकात्मकता दो प्रकार से आती है। विभिन्न प्रसंगों में, एक ही बिंब की अनेक कलात्मक आवृत्तियों के द्वारा तथा लाक्षणिक वक्रताओं के द्वारा।'[८८] इसके अतिरिक्त उन्होंने विरोधी बिंब, पशु बिंब, आवेग बिंब, यथार्थमूलक बिंब, पारदर्शी बिंब, शिशु बिंब, भाषा वैज्ञानिक बिंब और खण्डित बिंब की भी चर्चा की है। डॉ० प्रतिमा कृष्ण कृष्णबल ने स्थूल रूप से बिंबों के दो वर्ग किए हैं (क) स्थूल संवेदनात्मक बिंब(जो पांच ज्ञानेन्द्रियों के विषय हैं) (ख) सूक्ष्म संवेदनात्मक बिंब (जो प्रमुखत: सूक्ष्मेन्द्रिय मन के विषय हैं।'[८९]

स्थूल संवेदनात्मक बिंब के अंतर्गत चाक्षुष, श्रावणिक, स्पर्श, घ्राण और मिश्रित बिंब का विवेचन किया है। चाक्षुष बिंब का कलाजगत् में विशेष महत्व है।[९०] इस प्रकार के बिंबों का प्रयोग स्थूल सौन्दर्य को चित्रित करने के लिए किया जाता है। श्रावण बिंब का सम्बंध वस्तु या पदार्थ से उत्पन्न होनेवाली ध्वनि से है चाहे वह प्राकृतिक पदार्थों से उद्भूत ध्वनि हो या मानव निर्मित वस्तुओं की। त्वचा द्वारा अनुभूत बिंबों को स्पर्श बिंब कहते हैं। घ्राण बिंब- जिसका आकलन घ्राण संवेदना के द्वारा किया जाता है। मिश्रित

बिंब एक इन्द्रिय के विषय न होकर एक से अधिक इन्द्रियों के विषय होते हैं। अर्थात् चाक्षुष, घ्राणिक, स्पर्शिक, श्रावण आदि विभिन्न ऐन्द्रिय बोधों का मिश्रण इसमें होता है। सब मिलकर एक संपूर्ण बिंब की सृष्टि करते हैं। (ख) संवेदनात्मक बिंब के विषय में डॉ० प्रतिमा कृष्णा बल लिखती हैं - 'स्थूल ज्ञानेन्द्रियों की अपेक्षा उनका संवेदनमूल रूप से सूक्ष्मेन्द्रिय मन के प्रति है। अन्य इन्द्रियों के बोध से प्रत्यक्षत: सम्बद्ध होते हुए भी अन्तत: वे मानस-संवेदनों को उद्बुद्ध करते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ बिंब ऐसे भी हैं जो स्थूल ऐन्द्रिय संवेदनों की अपेक्षा अत्यन्त सूक्ष्म एवं अमूर्त प्रभाव को उभार कर मूर्तिमन्त करते हैं।'[६१] डॉ० शम्भूनाथ सिंह ने बिंब के दो भेद माने हैं - वर्णनात्मक और सांकेतिक या प्रतिकात्मक बिंब।[६२] डॉ० कुमार विमल ने बिंब का वर्गीकरण इस प्रकार से प्रस्तुत किया है - चाक्षुष, श्रावण, स्पार्शिक, घ्राणिक, रासनिक, आंगिक, अथवा जैव, वेगोदभेदक और गत्वर।[६३] डॉ० कैलाश बाजपेयी ने बिंब के छ: भेद किए हैं - दृश्य बिंब, वस्तु बिंब, भाव बिंब, अलंकृत बिंब, सान्द्र बिंब और विवृत बिंब इत्यादि।[६४]

प्रतीक का अर्थ- स्वरूप और परिभाषा :

सौंदर्यशास्त्र में प्रतीक का अपना ही महत्व है। यह अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम है। प्रतीक में बहुत कुछ संक्षेप में कहने की क्षमता होती है अर्थात् कम से कम शब्दों द्वारा अधिक से अधिक की व्यंजना की जाती है। प्रतीक का व्यवहार तर्कशास्त्र, गणित, धर्मशास्त्र, राजनीति, कला, दर्शन, समाजशास्त्र, मनोविज्ञान और काव्य के क्षेत्रों में होता है। डॉ० अरविंद पाण्डेय के मतानुसार 'काव्य में भावाभिव्यक्ति को प्रभावशाली बनाने और सौंदर्य विधान के लिए प्रतीकों का प्रयोग होता है। कवि अपने भाव एवं विचार को अधिक हृदय संवेद्य

तथा रागात्मक बनाने के लिए प्रतीकों का प्रयोग करता है। इससे वह पाठकों को आन्दोलित कर देता है। प्रतीकों की यह शक्ति कवि के हाथ में जादुई चिराग जैसी है। काव्य लाक्षणिक भाषा का योग होते ही भाव के विविध आयास खुल जाते हैं और लाक्षणिकता की शक्ति और सुपुष्टता प्रतीकों से मिलती है।'[९५]

प्रतीक अंग्रेजी शब्द 'सिम्बल' (symbol) का पर्यायवाची है। आधुनिक हिन्दी काव्य में प्रतीक शब्द का प्रयोग सिम्बल के अर्थ में होता है। 'Symbol ' शब्द की व्युत्पत्ति ग्रीक शब्द 'Symbolon' से हुई है, जिसका अर्थ है 'Sign' या 'Emblem '। यह दोनों अर्थ चिन्ह, प्रतीक, लक्षण, प्रक्रूप आदि की व्यंजना करते हैं। प्रतीक शब्द के अनेक अर्थ हैं जैसे चिन्ह, संकेत, प्रतिनिधि, प्रतिरूप, प्रतिभा, मूर्ति, निशान आदि। विभिन्न कोशों में इसके भिन्न-भिन्न अर्थ दिए गए हैं। लघु हिन्दी शब्द सागर के अनुसार प्रतीक का अर्थ है - चिन्ह, निशान, प्रतिरूप, आकृति, प्रतिमा, रूप, मूर्ति, वस्तु, किसी शब्द, संख्या, नाम, गुण या सिद्धान्त आदि का सूचक चिन्ह।[९६] इन्साइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन एण्ड एथिक्स में प्रतीक का अर्थ 'संकेत' या 'चिन्ह' दिया गया है।[९७] डॉ० संसारचन्द्र तिवारी लिखते हैं 'प्रतीक का अर्थ वह वस्तु है जो अपनी मूल वस्तु में पहुँच सके अथवा वह चिन्ह जो मूल का परिचायक हो।'[९८] अमरकोश में प्रतीक का अर्थ है अंग, प्रतीक, अवयव।[९९] अंग्रेजी हिन्दी कोश में सिम्बल का अर्थ है प्रतीक, संकेताक्षर, संकेत, चिन्ह आदि।[१००]

प्रतीक की परिभाषा :

विभिन्न भारतीय तथा पाश्चात्य विचारकों और विद्वानों की प्रतीक

सम्बंधी परिभाषायें प्रतीक के स्वरूप को व्यक्त करती हैं। इन विचारकों की परिभाषाओं पर विचार करने से पहले विभिन्न कोशों में दी गई प्रतीक की परिभाषा पर चर्चा करेंगे - इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका के अनुसार 'प्रतीक किसी वस्तु का ऐसा दृश्य प्रतिनिधि है जो उस वस्तु के साथ अप्रमेय साम्य के कारण निर्मित है, जिसको हम दिखा नहीं सकते वरन् उस वस्तु के साथ साहचर्य के कारण केवल अनुभव कर सकते हैं।'[१०१] इन्साइक्लोपीडिया ऑफ रिलिजन एंड एथिक्स में लिखा है 'बुद्धि अथवा कल्पना के अप्रत्यक्ष क्षेत्र में आभासित विचारों, भावों एवं अनुभूतियों के गोचर चिन्ह या संकेत का नाम प्रतीक है।'[१०२] हिन्दी साहित्य कोश में प्रतीक को इन शब्दों में परिभाषित किया गया है। 'प्रतीक शब्द का प्रयोग उस दृश्य अथवा गोचर वस्तु के लिए किया जाता है जो किसी अदृश्य अगोचर अथवा अप्रस्तुत विषय का प्रतिविधान उसके साथ अपने साहचर्य के कारण करती है अथवा यह कहा जा सकता है कि किसी अन्य स्तर की, समान रूप वस्तु द्वारा किसी अन्य स्तर के विषय का प्रतिनिधित्व करने वाली वस्तु का नाम प्रतीक है।'[१०३]

पाश्चात्य विचारक :

पाश्चात्य विचारकों ने प्रतीक की परिभाषा विविध प्रकार से की है। प्रसिद्ध विद्वान लैंगर का मत है 'प्रतीक अनिवार्य रूप से एक ऐसा संकेत है जो किसी अर्थ का द्योतन करे।'[१०४] व्हाइटहेड के अनुसार 'मानव अनुभव के आधार पर जब विश्वास, भावना और क्रियायें उद्भूत होती हैं, जिनका सम्बंध इन अनुभवों के अन्य उपांगों से होता है। उस समय मानव मस्तिष्क प्रतीकात्मक रूप में कार्य करता है।'[१०५] लॉरेंस प्रतीक को 'चेतन की आत्मजविन्तता से ओत प्रोत जैव इकाई' कहकर परिभाषित करते हैं।[१०६] उनके अनुसार 'प्रतीक एक संश्लिष्ट भावानुभव

को मूर्त करता है।[१०७] मार्शल अरबन अपने विचार इस प्रकार से प्रस्तुत करते हैं 'प्रतीक अप्रस्तुत या अप्रत्यक्ष कथन की एक सांकेतिक पद्धति है। व्यंजनाश्रित होने के कारण भी उसी की भांति कलात्मक एवं धार्मिक दोनों सन्दर्भों में उन भाषा प्रयोगों एवं भाव संप्रेषण के अन्य साधनों से सम्बद्ध है जिनका लक्ष्य प्रत्यक्ष अथवा शाब्दिक प्रस्तुति की अपेक्षा संप्रेष्य का संकेत अथवा मर्मोद्घाटन है।'[१०८] जार्ज वेली का मत है कि 'प्रतीक काव्य के प्रमुख तत्त्व वैशिष्ट्य की, इन काव्यात्मक तत्वों की जो तुरन्त 'महत्वपूर्ण' को संकेन्द्रित करते हैं, पहचान कराते हैं।[१०९] सैमन्स का विचार है 'किसी सूक्ष्म भाव-विचार या परोक्ष सत्ता का प्रतिनिधित्व करनेवाली वस्तु, जो तर्क बुद्धि से प्रस्तुत या उपास्य की अनुकृति नहीं कही जा सकती, प्रतीक कहलाती है।'[११०] आग्डन और रिचर्ड्स के अनुसार 'प्रतीकों के द्वारा निर्देशन, व्यवस्थापन, आलेखन और संप्रेषण के कार्य सम्पन्न होते हैं।'[१११]

भारतीय विचारक :

पाश्चात्य विद्वानों के अतिरिक्त भारतीय विचारकों ने भी प्रतीक को परिभाषित किया है। प्रसिद्ध विद्वान राजबली पाण्डेय के अनुसार 'अपने समान गुणों या विशेषताओं अथवा मानसिक सम्बंध के कारण, जिस वस्तु को देखते या सुनते ही कोई अन्य लक्षित वस्तु तत्काल ही बरबस स्मरण हो आती हो उसे प्रतीक कहा जाता है।'[११२] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी के विचार से 'किसी देवता का प्रतीक सामने आने पर जिस प्रकार उसके स्वरूप और विभूति की भावना चट मन में आ जाती है, उसी प्रकार काव्य में आई हुई कुछ वस्तुएँ विशेष मनोविकारों या भावनाओं को जाग्रत कर देती हैं, जैसे 'कमल' माधुर्यपूर्ण कोमल सौंदर्य की भावना जाग्रत करता है। 'कुमुदिनी' शुभ्र हास की, चन्द्र मृदुल आभा की, समुद्र प्राचुर्य, विस्तार और गंभीरता की, आकाश सूक्ष्मता और अनंतता की,

इसी प्रकार सर्प से क्रूरता और कुटिलता का, अग्नि से तेज और क्रोध का, `वाणी` से वाणी या विद्या का, `चातक` से निस्वार्थ प्रेम का संकेत मिलता है।`[११३] डॉ० देवराज लिखते हैं `कलाकार की एक अनुभूति होती है और उसके प्रकाशन के लिए वह ऐसे प्रतीकों की खोज करता है जो कुल मिलाकर दुबारा वही या उस जैसी अनुभूति उत्थित कर सके।[११४] डॉ० कुमार विमल लिखते हैं सम्पूर्ण अर्थ-सन्दर्भ व्यंजित करने की शक्ति अर्जित कर लेनेवाला कोई अप्रस्तुत या शब्द प्रतीक कहलाता है।[११५] डॉ० सुधीन्द्र के अनुसार-`प्रतीक वस्तुत: अप्रस्तुत की समस्त आत्मा या धर्म या गुण का समन्वित रूप लेकर आने वाले प्रस्तुत का नाम है। प्रतीक अप्रस्तुत का प्रस्तुत रूप में अवतार ही है।[११६] डॉ० रामकुमार वर्मा का मत है कि `एक शब्द में ही अनेकानेक भावों की अभिव्यक्ति प्रतीक का निर्माण करती है। `अरुण शिखा ध्वनि` प्रभात के लिए प्रतीक बन गयी है अथवा `अशोक`पुष्प जहाँ ऋतु सूचक है, वहाँ मुग्धा के पदाघात की व्यंजना में भी सार्थक हुआ है। प्रतीक का सम्बंध शब्द शक्ति की ध्वनि शैली से हैं। अत: साहित्य में अर्थ की विपुलता के लिए प्रतीक सदैव प्रयुक्त होगा। जिस प्रकार मधु का एक बिन्दु सहस्त्रों पुष्पों की सुगन्धी एवं मकरंद का संश्लिष्ट रूप है, उसी भांति एक प्रतीक अनेकानेक मानव जगत और वस्तु जगत के कार्य व्यापारों का संकलन है। अत: साहित्य के इतिहास में मन्त्र से लेकर आत्मबोध की अनेकानेक भावनाएँ इसी प्रतीक द्वारा उद्‌बुद्ध हुई हैं। प्रतीक व्यष्टि में समष्टि का संपोषण है।`[११७] डॉ० नगेन्द्र के विचार देखिए-`प्रतीक एक प्रकार से रूढ़ उपमान का ही दूसरा नाम है, जब उपमान स्वतंत्र न रहकर पदार्थ विशेष के लिए रूढ़ हो जाता है तो वह प्रतीक बन जाता है।`[११८] पंत जी ने लिखा है `हमारा मन जिस प्रकार विचारों के सहारे आगे बढ़ता है, उसी प्रकार मानव-चेतना प्रतीकों के सहारे विकसित होती है। हमारे राम और कृष्ण भी इसी प्रकार के प्रतीक हैं।`[११९] कैलाश बाजपेयी जी का मत है कि प्रतीक विस्तार को संक्षेप में कहने का माध्यम है।[१२०]

इस प्रकार से विभिन्न विद्वानों की परिभाषाओं पर विचार करने के पश्चात् यही निष्कर्ष निकलता है कि प्रतीक अप्रस्तुत वस्तु या भाव का प्रतिनिधित्व करने वाली एक गोचर संज्ञा है। इसका प्रयोग अभिव्यक्ति को सशक्त और अनुभूति को अधिक प्रभावोत्पादन बनाने के लिए किया जाता है।

प्रतीक और रूपक में अन्तर :

रूपक और प्रतीक में सबसे पहला अन्तर यह है कि रूपक की तुलना में प्रतीक में व्यंजनाशक्ति अधिक होती है। दूसरा यह कि रूपक को ज्ञान के द्वारा ही समझा जा सकता है, जबकि प्रतीक के लिए सहजवृत्ति का होना जरूरी है। डॉ० स्नेहलता श्रीवास्तव दोनों के अन्तर के विषय में लिखती हैं कि- 'रूपक में किसी वस्तु का गुण, कर्म अथवा धर्म के सादृश्य से किसी अन्य वस्तु पर आरोप होता है। यहाँ उपमेय और उपमान का एक होना दिखाया जाता है अर्थात् उपमेय में उपमान का आरोप कर दिया जाता है। सादृश्य पर आधारित होते हुए भी प्रतीक में न उपमेय पर उपमान का आरोप होता है और न चमत्कार का प्रधान्य। [१२१] डबल्यू बी० यीट्स के शब्दों में 'प्रतीक के द्वारा अभीप्सित वस्तु की वैसी पूर्ण अभिव्यक्ति होती है जैसी किसी अन्य प्रकार से सम्भव नहीं है, किन्तु रूपक के द्वारा वैसी अभिव्यक्ति होती है, जिसके समान या जिससे बढ़कर सुन्दर अभिव्यक्ति दूसरे प्रकार से भी संभव है।' [१२२]

प्रतीक ~~बि~~ और बिंब में अन्तर :

प्रतीक और बिंब भी सर्वथा एक दूसरे से भिन्न हैं। बिंब में चित्रमयता का प्रधान्य होता है लेकिन प्रतीक में चित्रमयता का होना आवश्यक नहीं है। इसमें प्रभाव साम्य या प्रभविष्णुता को विशेष महत्व प्रदान किया जाता है। [१२३]

बिंब एक ही क्षण में अनेकार्थ व्यंजक हो सकता है जबकि प्रतीक अनेक अर्थों की व्यंजना करने में सक्षम हो सकते हैं, किन्तु एक समय में वे केवल एक निश्चित संकेत ही करते हैं। प्रतीक अर्थप्रेषण के लिए सदैव अनिवार्य नहीं है किन्तु बिंब सामान्य अर्थप्रेषण के लिए भी अनिवार्य है।[१२४] प्रतीक का गणित अंकों की तरह निश्चित अर्थ होता है, बिंब का अर्थ बीजगणित के संकेतों की तरह परिवर्तनशील होता है। इसके अतिरिक्त प्रतीक निशक्त होकर समाप्त भी हो जाता है जबकि बिंब में ऐसा नहीं होता।

प्रतीक और मिथक में अन्तर :

मिथक मनुष्य की सामूहिक चेतना की उपज होते हैं जबकि प्रतीक व्यक्ति चेतना की। डॉ० कुमार विमल दोनों के अन्तर को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं - 'प्रतीक प्रयोग की विकसित दशा में सार्वभौम स्तर से 'विशेष' की ओर उन्मुख होने, अत: विशिष्टार्थ बोधक बनने की प्रवृत्ति रखते हैं, जबकि 'मिथ' 'विशेष' से 'सामान्य' की ओर अग्रसर होते रहते हैं फलस्वरूप प्रतीक की प्रेषणीयता अधिक कलात्मक होती है।'[१२५] जार्ज वेले इस विषय में लिखते हैं- 'प्रतीक एक विशेष कोटि का उपमान होता है तथा मिथक सादृश्य-विधान की प्रक्रिया में अनुनादित हो उठने वाला स्तवक प्रमाणित होता है।'[१२६]

प्रतीक और संकेत में अन्तर :

प्रतीक और संकेत को प्राय: एक ही मान लिया जाता है जो कि युक्तिसंगत नहीं है। दोनों में पर्याप्त अन्तर है। सबसे पहला अन्तर यह है कि प्रतीक में कलात्मकता और सांकेतिकता रहती है परन्तु संकेत में मात्र सांकेतिकता। डॉ० प्रतिमा कृष्णबल के अनुसार 'संकेत या चिन्ह निश्चित अर्थ के द्योतक होने

के कारण अभिधार्थ के अंग बन जाते हैं जबकि प्रतीकों का तो आधार ही लक्षणा व्यंजना है। इसीलिए प्रतीकों में संकेत या चिन्ह की अपेक्षा अधिक अस्पष्टता रहती है।[१२७] इसके अतिरिक्त प्रतीक में अप्रस्तुत की प्रधानता होती है जबकि संकेत में प्रस्तुत की।

प्रतीक का वर्गीकरण :

पाश्चात्य तथा भारतीय विद्वानों ने प्रतीक के पृथक-पृथक वर्गीकरण प्रस्तुत किए हैं। पाश्चात्य विद्वान वारेन ने प्रतीक के तीन प्रकार माने हैं (१) वैयक्तिक प्रतीक (२) परम्परागत प्रतीक (३) प्रकृत प्रतीक। वैयक्तिक प्रतीक विधान का अर्थ है एक प्रणाली। जिस प्रकार कोई सतर्क अध्येता किसी संकेत लिपि को पढ़ लेता है, किसी बिंब विधान का विश्लेषण तथा किसी संदेश की स्पष्ट पढ़ाई इत्यादि। परम्परा से लीक लीक चले आने वाले ऐतिहासिक पौराणिक नाम, परम्परागत प्रतीक तथा प्रकृत प्रतीक विधान के अनेक व्यंजनाओं से भरी उक्तियों में एक स्थिरता और कठोरता आ जाती है जो काव्यात्मक उक्तियों और विशेषत: समकालीन काव्यात्मक उक्तियों में देखने में नहीं आती।[१२८] सुप्रसिद्ध पाश्चात्य विचारक एच फ्लेंडर्स ने कवि दृष्टि से प्रतीक को तीन वर्गों में विभाजित किया है (१) भावपरक प्रतीक (२) व्याख्यापरक प्रतीक (३) अंतर्दृष्टिपरक प्रतीक। जहाँ पर शब्दार्थ को लक्ष्य न करके, भाव पर अधिक बल दिया जाता है वहाँ पर भावपरक प्रतीक होता है। दूसरे प्रकार के व्याख्यापरक प्रतीक में प्रकट होते चले जानेवाले गुणों के अतिरिक्त दृश्य-साम्य को भी लक्ष्य किया जाता है। तीसरे प्रकार के अंतर्दृष्टिपरक प्रतीकों का प्रयोग धार्मिक या गम्भीर काव्य में अधिक होता है। सी० एम० बावरा ने आकार की दृष्टि से प्रतीक के तीन भेद किए हैं - (१) शब्द प्रतीक (२) वाक्य प्रतीक (३) प्रबन्ध प्रतीक।[१२९] शब्द प्रतीक - प्रतीकत्व-विशिष्ट सारे शब्द इसके अंतर्गत

आ जाते हैं । वाक्य प्रतीक- मुहावरे, लोकोक्तियाँ और कहावतें इत्यादि का समावेश इसके अंतर्गत होता है । प्रबन्ध प्रतीक- इसके अन्तर्गत रूपक और समासोक्ति पद्धति के काव्य रखे जा सकते हैं , जिनकी समूची निर्मिति दुहरे अर्थ वाली होती है । यीट्स प्रतीक को दो वर्गों में विभाजित करते हैं - (१) ध्वनि प्रतीक (२) विचार प्रतीक ।[१३०] ध्वनि प्रतीक के अन्तर्गत भावात्मक प्रतीक आ जाते हैं और विचार प्रतीक में बौद्धिक और वैचारिक प्रतीक । प्रसिद्ध विद्वान अर्बन ने प्रतीक के तीन भेद किए हैं - (१) ऐच्छिक प्रतीक (२) वर्णनात्मक प्रतीक (३) सूक्ष्म प्रतीक ।[१३१] एवलिन अण्डरहिल प्रतीक का वर्गीकरण इस प्रकार से करते हैं -(१) यात्राद्योतक प्रतीक (२) प्रेमद्योतक प्रतीक (३) यतिभाव द्योतक प्रतीक ।[१३२]

पाश्चात्य विद्वानों के समान भारतीय विद्वानों ने भी प्रतीक के अनेक वर्ग किए हैं - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने प्रतीक के दो भेदों की चर्चा की है जिनमें से कुछ मनोविकारों या भावों को जगाते हैं और कुछ भावनाओं या विचारों को ।[१३३] महेन्द्रनाथ सरकार ने प्रतीक को दो वर्गों में बाँटा है (१) कृत्रिम प्रतीक (२) प्राकृतिक प्रतीक ।[१३४] कृत्रिम प्रतीक वे प्रतीक हैं जिनके पीछे धर्म और मानवीय संस्कार की कोई परम्परा नहीं रहती । प्राकृतिक प्रतीक आध्यात्मिक चेतना- गतिशीलता से ओत-प्रोत होते हैं तथा ये अन्तर्मन को आन्दोलित भी करते हैं । डॉ० रामअवध द्विवेदी ने प्रतीक के तीन भेद किए हैं - (१) परम्परागत प्रतीक (२) व्यक्तिगत प्रतीक (३) प्राकृतिक प्रतीक । प्रो० राजाराम रस्तोगी ने प्रतीक को पाँच वर्गों में विभाजित किया है - (१) अक्षरात्मक प्रतीक (२) संकेतात्मक प्रतीक (३) संख्यात्मक प्रतीक (४) रूपात्मक प्रतीक (५) कथात्मक प्रतीक ।[१३५] इसी प्रकार से प्रेमनारायण शुक्ल ने प्रतीक के चार भेद किए हैं - (१) परंपरागत प्रतीक (२) देशगत प्रतीक (३) व्यक्तिगत प्रतीक (४) युगगत प्रतीक।[१३६]

मिथक का अर्थ- स्वरूप और परिभाषा :

'मिथक' शब्द अंग्रेजी के 'मिथ' (Myth) का पर्याय है, 'मिथ' की उत्पत्ति यूनानी शब्द 'मुथोस' से हुई है, जिसका अर्थ है कथा । हिन्दी में मिथक के लिए पुरावृत्त, पुराख्यान, कल्पकथा, पुराणकथा, धर्मगाथा, देवकथा, पुराकथा, आदि अनेक शब्दों का प्रयोग हुआ है । परन्तु यह सभी शब्द उस भावना को व्यक्त करने में असमर्थ हैं, जो कि मिथक शब्द से व्यक्त होती है । डॉ० जगदीशप्रसाद श्रीवास्तव इस विषय में लिखते हैं -'इन प्रतिशब्दों में या तो अव्याप्ति है, या अतिव्याप्ति । मिथक न केवल धर्मगाथा है और न ही मात्र देवकथा । सृष्टि कथा के सीमित अर्थ में भी उसे बाँधना कुछ बहुत समीचीन नहीं कहा जा सकता । वस्तुत: उसके प्रसंग में 'कथा' शब्द का ही प्रयोग भ्रामक है क्योंकि मिथकीय कथा का स्वरूप कथा के प्रचलित और स्वीकृत रूप से बहुत भिन्न हैं । 'पुरा' के योग से बने शब्दों में अर्थ का फैलाव आवश्यकता से अधिक हो जाता है और उनकी परिधि में लोककथा और लोकाख्यान भी आ जाते हैं जो मिथकों से सम्बद्ध होने पर भी स्वयं 'मिथक' नहीं कहे जा सकते ।' [१३७]

सामान्यत: मिथक का अर्थ एक ऐसी परंपरागत कथा होती है जो अति प्राकृत घटनाओं और भावों से सम्बंधित होती हैं । सत्रहवीं -अठारहवीं शताब्दी तक मिथक उस काल्पनिक कथा के रूप में जाने जाते थे, जो ऐतिहासिक और वैज्ञानिक दृष्टि से असत्य होती हैं । यूरोप में तो आज भी 'मिथक' का अर्थ अवास्तविक या निराधार माना जाता है, परन्तु धीरे- धीरे परिस्थितियों के अनुरूप विचारकों की दृष्टि में परिवर्तन आया और मिथक का अर्थ बदल गया । मिथ को कपोल कल्पना के स्थान पर सत्य का वाहक माना जाने लगा । यह सत्य

एक ओर तो विज्ञान के सत्य से भिन्न है तो दूसरी ओर इतिहास के सत्य से । मिथक को नये रूप में प्रस्तुत करने का श्रेय ग्याम्बतिस्ता विको(१६६८-१७४४ ई०) को जाता है । इसके अतिरिक्त कालरिज, एमर्सन और नीत्शे आदि विद्वानों ने इसे नये रूप में ही स्वीकार किया । विभिन्न कोशों में मिथक को परिभाषित किया गया है । चेम्बर्स काम्पैक्ट डिक्शनरी के अनुसार- 'मिथ शब्द जहाँ देवताओं एवं वीरों की प्रब प्राचीन परम्परागत गाथा है जो किसी तथ्य या प्राकृतिक सिद्धान्त की व्याख्या प्रस्तुत करती है, वहाँ उसका अर्थ मिथ्या या कपोल - कल्पित भी होता है ।'[१३८] एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका में मिथ के विषय में लिखा है कि - 'वे आदिम युग के विश्वासों को अभिव्यक्त, संवर्धित तथा संहिताबद्ध करते हैं - साथ ही नैतिकता को सुरक्षित रखते हुए कर्मकाण्ड और व्यवहारिक नियमों का प्रवर्तन करते हैं ।'[१३९] एनसाइक्लोपीडिया आफ सोशल साइंस में मिथक को अतिप्राकृत संसार की कथाओं के रूप में स्वीकार किया गया है ।[१४०] मेरिया लीच का मत है -'मिथ वह कथा है जो किसी युग में घटित दिखायी गयी हो । इन कथाओं में किसी देश के धार्मिक विश्वास, प्राचीन वीरों, देवी-देवताओं, जनता की अलौकिक तथा अद्भुत परम्पराओं तथा सृष्टि रचना का वर्णन होता है ।'[१४१]

पाश्चात्य विचारक :

पाश्चात्य साहित्य में तो 'मिथ' पर विशाल चर्चा हुई है । कुछ विद्वानों के मिथ सम्बंधी विचार अवलोकनीय हैं - रेने वेलेक और आस्टिन वारेन का विचार है-'इस शब्द का अर्थ निश्चित कर पाना आसान नहीं है । यह एक अर्थ-क्षेत्र की ओर संकेत करता है । हम सुनते हैं कि कवि और चित्रकार मिथ की तलाश करते रहते हैं । हमें प्रगति या लोकतन्त्र के मिथ की बातें सुनने में आती हैं । हम सुनते हैं कि विश्व साहित्य में मिथ को पुन: स्थान दिया जाने लगा है,

लेकिन साथ ही यह भी सुनने में आता है कि न तो मिथ की रचना की जा सकती है, न मिथ में विश्वास किया जा सकता है और न किसी से इस पर विश्वास ही कराया जा सकता है।' [१४२] ह्वैले के अनुसार-'मिथ व्यक्ति और समाज के जीवन के बीच तारतम्य स्थापित करने वाला एक अपरिहार्य सिद्धान्त है। [१४३] प्रो० वाच का मत है -'मिथ को धार्मिक अनुभव की सैद्धांतिक अभिव्यक्ति के रूप में समझा जाना चाहिए।' [१४४] कैसिरेर लिखते हैं -'मिथक का सत्य सर्वथा आत्मपरक एवं मनोवैज्ञानिक (मानसिक) सत्य होता है और वह जागतिक वास्तविकता को मानवीय भावनाओं की शब्दावली में व्यक्त करता है। (इस प्रकार) 'यह तर्कणाशक्ति के आविर्भाव के पूर्ववर्ती मानव- अनुभवों का अभिलेख है।' [१४५] फिलिप व्हीलराइट के अनुसार- 'मिथक सम्पूर्ण मानव के समग्र अनुभवों की अभिव्यक्ति है।' [१४६] ऐरिस कालहर की धारणा है कि 'मिथक सत्य-दर्शन के उन समस्त रूपों की समष्टि का नाम है जो प्रयोग और प्रमाण से सिद्ध नहीं किए जा सकते, जो अनुभव और तर्क से परे हैं।' [१४७] एरिक फ्राम के मतानुसार मिथक अपनों के द्वारा अपनों के लिए दिया गया एक सन्देश है। [१४८] शिलिंग का मत है कि मिथ किसी संस्कृति के मूल एवं गहराई में निहित आस्था एवं विश्वास को अभिव्यक्त करने के लिए एक विशिष्ट उपयुक्त साहित्यिक विधा है। [१४९] बिडने लिखते हैं - 'मिथ उन्मुक्त रूप से मनगढ़न्त कोई वस्तु नहीं, अपितु इतिहास से जुड़ी एवं मनुष्य के अन्तर्मन को स्पर्श करनेवाली घटनाओं से सम्बद्ध भावना एवं विश्वास का अनिवार्य रूप है।' [१५०]

<u>भारतीय विचारक :</u>

डॉ० कृष्णादेव उपाध्याय लिखते हैं -'कोई कथा तभी तक मिथ कही जा सकती है जब तक उसके प्रधान पात्र देवी और देवता हैं अथवा इन पात्रों में देवत्व की भावना बनी है, परन्तु जब ये पात्र देवत्व की कोटि से नीचे उतरकर

मनुष्य की श्रेणी में आ जाते हैं तब उस कथा को 'लीजैण्ड' कहने लगते हैं।[१५१] अज्ञेय जी का मत है-'संस्कृति, समाजशास्त्र, धर्म के सन्दर्भ में मिथक का रूप अलग-अलग है। सांस्कृतिक सन्दर्भ में मिथक एक तरह का रहस्यमय शक्ति स्रोत है। अतः मिथक एक और अस्मिता की पहचान और दूसरी ओर अपनी रक्षा का एक साधन होती है।'[१५२] डॉ० नगेन्द्र के अनुसार-'कोई ऐसी कथा जो विचारणा एवं आलोचना शक्ति से सर्वथा शून्य आदिम चेतना की स्वयं स्फूर्त उद्भावना हो और जिसमें प्रकृति की शक्तियों को देहधारी अथवा अर्धदैहिक रूप में प्रतिनिधान किया गया हो, जो प्राकृतिक एवं अतिमानवीय कार्य सम्पादन करते हैं, उसे 'मिथ' कहते हैं।[१५३] शम्भुनाथ सिंह का विचार है कि- 'मिथक के अर्थ निरूपण में दो तरह की दृष्टियाँ प्रमुख रही हैं। पहली दृष्टि के अनुसार मिथक सामान्यतः एक कथा है, जो अयथार्थ, मिथ्या (फिक्शन) बौद्धिकता विहीन, विलक्षण और प्राक्-तर्क (प्रीलॉजिकल) है दूसरी दृष्टि के अनुसार मिथक ऐतिहासिक और प्राक्-ऐतिहासिक यथार्थ पृष्ठभूमि पर आदर्श एवं पवित्र कथा है, जिसमें प्रतीकात्मक रूप में मानवीय एवं अतिमानवीय घटनाओं का इतिहास मिलता है।'[१५४]

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि मिथक एक प्रकार की कथा है जिसकी घटनाएं अमानवी या अलौकिक होने पर भी मानव-जीवन के लिए विशेष महत्वपूर्ण होती हैं। इसमें धर्म के समान विश्वास की भावना अधिक होती है।

मिथक और निजंधरी कथा :

मिथक और निजंधरी कथा में अन्तर है। निजंधरी कथाओं का सम्बंध महापुरुषों, साधु, सन्तों, देवताओं या राक्षसों के जीवन क और कार्यों से होता है, परन्तु उसमें इतिहास का तत्व अवश्य ही निहित रहता है। मिथक में

ऐतिहासिक तत्व उपस्थित नहीं रहता । उनमें केवल दैवी शक्ति मानी जाती है वही आदि और अनंत है ।

मिथक और धर्मगाथा :

मिथक और धर्मगाथा में भी भिन्नता है । मिथ में सृष्टि रचना और देवी-देवताओं की कथायें होती हैं, परन्तु उसमें धार्मिक महात्म्य का होना जरूरी नहीं है । धर्मगाथा में देवी- देवताओं के ~~अस्तित्व~~ अस्तित्व के साथ-साथ धार्मिक महात्म्य की आवश्यकता होती है ।

मिथक और लोककथा :

मिथक के पात्र दैविक और मानवीय दोनों ही प्रकार के हो सकते हैं, किन्तु लोक कथा के पात्र अधिकतर मानवीय ही होते हैं, विशेषकर नायक तो मनुष्य ही होता है । इसके अतिरिक्त मिथक की घटनायें एक निश्चित जगह पर ही घटित होती हैं, परन्तु लोककथा की घटनाओं का कोई निश्चित स्थान नहीं होता बल्कि वह तो कहीं भी घट सकती है । एक अन्तर यह भी है कि मिथक का अन्त दुःखमय होता है जबकि लोककथा का अन्त सुखमय होता है ।

मिथक का वर्गीकरण :

विभिन्न विद्वानों ने मिथक का वर्गीकरण भिन्न-भिन्न प्रकार से किया है । प्रसिद्ध विद्वान कॉक्स ने मिथक को प्राकृतिक तत्वों के आधार पर निम्न रूप से वर्गीकृत किया है -

(१) अन्तरिक्ष- इसके अंतर्गत द्यौस, वरुण मित्र, इन्द्र और ब्रह्मा आदि से सम्बंधित मिथक आ जाते हैं ।

(२) आलोक- इसके अंतर्गत सूर्य, सवितृ, सोम, उर्वशी, उषस् आदि मिथकों का समावेश किया है ।

(३) अग्नि - अग्नि से सम्बंधित मिथक इसमें आ जाते हैं ।

(४) वायु - वायु, मरुत, रुद्र आदि के मिथक ।

(५) जल

(६) मेघ

(७) पृथ्वी

(८) अधोलोक

(९) अन्धकार - वृत्र, पाणि के मिथक ।

पश्चिमी विद्वान गार्डनर ने मिथक का विशाल वर्गीकरण प्रस्तुत किया है । उनका वर्गीकरण द्रष्टव्य है -

(१) पहले वर्ग के अंतर्गत उन्होंने ऋतु परिवर्तन और प्राकृतिक परिवर्तनों से सम्बंधित मिथकों को रखा है । जैसे- ऋतुओं, दिनरात, मास, वर्ष आदि का क्रम और सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी आदि की गतिशीलता, परिक्रमा, स्थिति आदि ।

(२) दूसरे वर्ग में उन्होंने प्रकृति-तत्वों के मिथकों को रखा है जैसे- अग्नि, जल, वायु, पर्वत, सरिता आदि की जन्म से सम्बंधित रहस्यात्मक कथाएँ आदि ।

(३) तीसरे वर्ग के अंतर्गत उन्होंने असामान्य प्रकृति तत्वों के मिथकों का समावेश किया है । जैसे- भूकम्प, प्रलय, ज्वालामुखी आदि की विभिन्न घटनाएँ ।

(४) इसके अंतर्गत सृष्टि के उद्भव से सम्बंधित मिथक जैसे- मनु की कथाएँ ।

(५) देवों के जन्म, महत्व और स्वरूप से सम्बंधित मिथक ।

(६) मनुष्य एवं पशुओं के जन्म सम्बंधी विवरण देने वाले मिथक ।

(७) रूपान्तरण या आवागमन के मिथक- मृत्यु के बाद के जीवन की व्याख्या ।

(८) वीर नायक, परिवारों और राष्ट्रों से सम्बंधित मिथक- महापुरुष, वंश, कबीले आदि का उदय ।

(९) सामाजिक संस्थाओं और वस्तुगत आविष्कारों से सम्बंधित मिथक ।

(१०) मृत्यु के अनन्तर आत्मा की स्थिति-स्वर्ग,नरक आदि से सम्बंधित मिथक ।

(११) दैत्यों और दानवों की गाथाओं के मिथक ।

(१२) ऐतिहासिक घटनाओं से सम्बंधित मिथक ।[१५५]

प्रो० एच० जे० रोज़ ने मिथक के तीन वर्ग किए हैं - (१) सृष्टि-सम्बंधी मिथक (२) प्रलय सम्बंधी मिथक (३) देवताओं के प्रणयाचार-सम्बंधी मिथक ।[१५६]

भारतीय विद्वान डॉ० सत्येन्द्र मिथक को चार वर्गों में विभाजित करते हैं - (१) विश्व-निर्माण की व्याख्या करने वाले (२) प्रकृति के इतिहास की विशेषताएँ बतानेवाले (३) मानवी सभ्यता के मूल की व्याख्या करने वाले (४) समाज और धर्म-प्रथाओं के मूल अथवा पूजा के इष्ट के स्वभाव तथा इतिहास की व्याख्या करने वाले ।[१५७] डॉ० नगेन्द्र ने विषय के अनुसार मिथक के दो वर्ग किए हैं (१) प्राकृतिक मिथक (२) धार्मिक मिथक । धार्मिक मिथक के दो भेद किए हैं पहला उपास्य देवों के स्वरूप से सम्बंधित मिथक और दूसरा कर्मकांड से सम्बंधित मिथक ।[१५८] इन्होंने सर्जन- प्रक्रिया के अनुसार भी मिथक के दो भेद किए हैं - मौलिक मिथक और आनुषंगिक मिथक ।[१५९] इन दोनों

के विषय में डा० नगेन्द्र लिखते हैं - "मौलिक मिथक सामूहिक अचेतन की सृष्टि हैं और आनुषंगिक मिथक जिनकी रचना वैयक्तिक अचेतन या अवचेतन के द्वारा होती है। आद्य बिंब-रूप मिथक, जो भारतीय, यूनानी तथा सभी जातियों के प्राचीन वांगमय में मिलते हैं, मौलिक मिथक हैं और परवर्ती कवियों ने भाव-समाधि की स्थिति में जिन मिथकों की सृष्टि की है वे आनुषंगिक मिथक हैं।" [१६०]

सन्दर्भ :

१- हलायुध कोश, पृ० ७१४

२- वाचस्पत्य कोश, पृ० ५३१४

३- हलायुध कोश, पृ० ७१४

४- डॉ० रामेश्वरलाल खण्डेलवाल, आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और सौंदर्य : पृ० १४१

५- वामन शिवराम आप्टे : संस्कृत हिन्दी कोश,

६- डॉ० कुमार विमल : सौंदर्यशास्त्र के तत्व, पृ० ७० से उद्धृत ।

७- Beauty is something supervening on the summetry and tha t sumetrical is beautiful for some other reason-carrit Philosophies of Beauty: Page-191

८- "Beauty is truth,Truth Beauty,that is all ye know on earth, and all ye need to know"-Keats:Quoted from Mathew Arnolds Essay in criticism:Second series:Page-83

९- "The pleasant Expression of good is beauty". -Slagel:Quoted from History of Aesthetics by Bosanquet.

१०- 'We may define beauty as successful expression, or better as expression and nothing more,because expression when it is not successful(is not expression'-B.Croce', Aesthetics: Page-79

११- Beauty is the idea as it shows itself to sense-B.Bosanquet: A History of Aesthetics:Page-336

१२- पंडितराज जगन्नाथ : रस गंगाधर, पृ० १३

१३- कालिदास : कुमार सम्भवम्,(पंचम सर्ग) संपादक: सीताराम चतुर्वेदी, कालिदास ग्रंथावली, पृ० २६८

१४- माघ : शिशुपालवधम्, ४।१७
१५- डॉ० हरद्वारीलाल शर्मा, सौंदर्यशास्त्र, पृ० १०
१६- प्रसाद : कामायनी, पृ० १०२
१७- हरिवंश सिंह : सौंदर्य विज्ञान, पृ० ५६-५७
१८- पन्त : पल्लव, पृ० ८७
१९- हंसकुमार तिवारी, कला
२०- हरिवंश सिंह शास्त्र : सौंदर्य विज्ञान, पृ० २१ से उद्धृत ।
२१- डॉ० फतह सिंह , साहित्य और सौंदर्य, पृ० १०७ से उद्धृत ।
२२- डॉ० रामेश्वरलाल खण्डेलवाल, जयशंकर प्रसाद वस्तु और कला, पृ० २९५
२३- वही, पृ० २९५-२९६
२४- डॉ० रामेश्वरलाल खण्डेलवाल, आधुनिक हिंदी कविता में प्रेम और सौन्दर्य, पृ० १५४
२५- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, चिन्तामणि(भाग-२) पृ० १८६-१८७
२६- आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, कल्पलता, पृ० १४४
२७- What is Art: Page-95
२८- Ibid : Page-98
२९- Ibid : Page- 93
३०- डॉ० रामेश्वरलाल खण्डेलवाल, आधुनिक हिंदी कविता में प्रेम और सौंदर्य, पृ० १७४
३१- डॉ० रामेश्वरलाल खण्डेलवाल, जयशंकर प्रसाद वस्तु और कला, पृ० ३२०
३२- डॉ० भगीरथ मिश्र, काव्यमनीषा, पृ० ६७
३३- The Concise Oxford Dictionary.
३४- हिन्दी साहित्य कोश, पृ० २०५-२०६

३५- डॉ० कुमार विमल : सौंदर्यशास्त्र के तत्व, पृ० १४२

३६- डॉ० ब्रिजरानी भार्गव, पंत के काव्य में कल्पना का कर्तृत्व, पृ० ५

३७- 'रिपब्लिक' में 'मिथ' वाला प्रसंग ।

38. Quoted from W.B.Worsfold: Principles of Literary Criticism: Page-85.

39. "The poets eye,in a fine frenzy rolling.
Doth glance from heaven to earth;from earth to heaven;
And, as Imagination bodies forth.
The forms of things, unknown, the poets pen.
Turns them to shapes, and gives to airy nothing.
A Local habitation and a name"
-W.Shakespeare : 'A Mid summer Night's dream'.Act-V Seen-I.

40. Shelley: Quoted in Poetry and criticism of the Romantic Movement: Page-503.

41. William Blake: Poetry and Prose: Page-82.

42. Coleridge: Biographia Literaria: Page-116

43. लीलाधर गुप्त :पाश्चात्य साहित्यालोचन के सिद्धांत : पृ० ५१ से उद्धृत ।

44. Gurrey: The appreciation of Poetry: Page-51

45. Solger : Tolstoy 'What is Art' Page-99.

४६- गुरुपदेशादध्येतुं शास्त्रं जडधियो अप्यलम्
काव्यं तु जायते जातु कस्यचित् प्रतिभावतः ।
- भामह : काव्यालंकार, पृ० १।१५

४७- प्रज्ञा नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभामता ।
- भामह : काव्यलंकार, पृ० १।१६ से उद्धृत ।

४८- प्राक्तनाद्यतन संस्कार- परिपाक प्रौढा प्रतिमा काचिदेव कवि शक्तिः ।
अम्लान प्रतिभोदभिन्न नवशब्दार्थ बन्धुरः ।
अयत्न विहितस्वल्प मनोहारि विभूषणः ।।
- हिन्दी में वक्रोक्ति जीवितः पृ० १०४

४६- तस्य च कारण कविगता केवला प्रतिभा ।
सा च काव्य घटनानुकूल शब्दार्थोपस्थिति : ।।
- रस गंगाधर, पृ० ३३
५०- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, चिन्तामणि(भाग-२) पृ० २१६
५१- बाबू श्यामसुन्दर दास, साहित्यालोचन, पृ० १०३
५२- डॉ० नगेन्द्र, ध्वन्यालोक, पृ० ७०
५३- डॉ० विनोदनारायण सिंन्हा, साहित्यिक निबंध, पृ० ५६६
५४- पन्त, आधुनिक कवि, पृ० १६
५५- पंडित रामदहिन मिश्र, काव्य दर्पण, पृ० ४१
५६- गणपतिचन्द्र गुप्त, रस सिद्धांत का पुनर्विवेचन, पृ० ३४८
५७- डॉ० रामखेलावन पाण्डेय, काव्य और कल्पना, पृ० ६
५८- Coleridge :Biographia Literaria: Page-146
५९- Emerson : Letter's and Social Aims: Page-29
६०- डॉ० कुमार विमल, सौंदर्यशास्त्र के तत्व, पृ० १७४
६१- डॉ० कान्तिचन्द्र पाण्डेय, स्वतंत्र कलाशास्त्र(द्वितीय भाग,पाश्चात्य) पृ० १५६-१५७ से उद्धृत ।
६२- डॉ० कान्तिचन्द्र पाण्डेय, स्वतंत्र कलाशास्त्र(द्वितीय भाग) पृ०३५३ से उद्धृत ।
६३- वही, पृ० ४२२ से उद्धृत ।
६४- डॉ० रामकुमार वर्मा, साहित्यशास्त्र, पृ० ६६
६५- रामकुमार वर्मा, साहित्यशास्त्र, पृ० ६७
६६- Shorter Oxford Dictionary: Vol.I Page-958
६७- वी० एस० आप्टे, संस्कृत हिन्दी कोश, पृ० ७१७
६८- Chamber's Dictionary: Page-527
६९- Encyclopaedia Britanica: Vol.14, Page-328.

७०- डा० नगेन्द्र : काव्य बिंब, पृ० २२

७१- Susonne K.Longer: Feeling and Form, Page-48

७२- C.D.Lewis : The poetic Image: Page-22

७३- डॉ० केदारनाथ सिंह, आधुनिक हिन्दी कविता में बिंब विधान, पृ० २७ से उद्धृत ।

७४- Coombe : Literature and criticism: Page-49

७५- George Whalley: Poetic Proc ess: Page-145

७६- Ezra Pound : Literary essays of Ezra pound edited by T.S.Eliot : Page-4

७७- Hegel : The philosophy of Fine Art : Vol.II Page-144-145

७८- डॉ० नगेन्द्र, काव्य बिंब, पृ० २

७९- डॉ० कुमार विमल, सौंदर्यशास्त्र के तत्व, पृ० २०१

८०- पन्त, पल्लव, पृ० २६

८१- दिनकर : काव्य की भूमिका, पृ० १०१

८२- डॉ० रामचन्द्र शुक्ल, चिन्तामणि(भाग-१) पृ० १४७ -१४८

८३- डॉ० प्रतिभाकृष्णाबल, छायावाद का काव्य शिल्प, पृ० २७७

८४- रामपूजन तिवारी, पाश्चात्य सौंदर्यशास्त्र, पृ० २०३ से उद्धृत ।

८५- डॉ० कुमार विमल : सौंदर्यशास्त्र के तत्व, पृ० २६६

८६- Skelton: The poetic pattern : Page-90-91

८७- डॉ० केदारनाथ सिंह, आधुनिक हिंदी कविता में बिंब विधान, पृ० २५०

८८- वही- पृ० २५७

८९- डॉ० प्रतिभाकृष्णाबल, छायावाद का काव्यशिल्प, पृ० २८२

९०- 'The word Image is almost inseparably wedded to the sense of sight.'
- Susanne K.Langer : Feeling and Form: Page-48

९१- डॉ० प्रतिमाकृष्णाबल, छायावाद का काव्य शिल्प, पृ०
९२- डॉ० शंभुनाथसिंह, प्रयोगवाद और नयी कविता,पृ० २१७
९३- डॉ० कुमार विमल, सौंदर्यशास्त्र के तत्व, पृ० २१५-२१६
९४- डॉ० कैलाश बाजपेयी, आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प, पृ०१४६-१५३
९५- डॉ० अरविंद पाण्डेय, भारतीय काव्यशास्त्र, पृ० ११८ १३८
९६- लघु हिंदी शब्द सागर, पृ० ६४४
९७- Encyclopaedia of Religion and Ethics: Vol.XII.Page-139
९८- डॉ० संसारचन्द्र, हिन्दी काव्य में अन्योक्ति, पृ० ६८
९९- अमरकोश, २३।८७
१००- अंग्रेजी हिन्दी कोश, पृ० ७०८-७०९
१०१- Encyclopaedia Britannica
१०२- Encyclopaedia of Religion and Ethics: Vol.XII.Page-139
१०३- सं० धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य कोश(भाग-१) पृ० ५१५
१०४- S.K.Longer : Problem of Art: Page-132
१०५- A.N.Whitehead : Symbolism: Its meaning and effects:Page-11
१०६- D.H.Lawrence: Selected Literary criticism:ed.Anthony Beal : Page-273-274.
१०७- Ibid : Page-158
१०८- Wilbur Marshall urban : Language and Reality (Part-II The principles of symbolism)Page-403.
१०९- George whalley: Poetic Process: Page-111

११०- Symons : The Symbolist Movement in Literature(Introduction)

१११- G.K.Ogden and S.A.Richards: Meaning of the Meaning: Page-205.

११२- डॉ० राजबली पांडेय, हिन्दू संस्कार, पृ० २३६

११३- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, चिन्तामणि(भाग-२) पृ० १२

११४- डॉ० देवराज, संस्कृति का दार्शनिक विवेचन, पृ० २२

११५- डॉ० कुमार विमल, सौंदर्यशास्त्र के तत्व, पृ० २५६

११६- डॉ० सुधीन्द्र, हिन्दी कविता में युगान्तर, पृ० ३६८

११७- डॉ० रामकुमार वर्मा, साहित्यशास्त्र, पृ० ११८

११८- डॉ० नगेन्द्र, काव्य बिंब, पृ० ७-८

११९- पंत, गद्यपथ, पृ० १४५

१२०- डॉ० कैलाश बाजपेयी, आधुनिक हिंदी कविता में शिल्प, पृ० ७५

१२१- लक्ष्मय्या शेट्टी, सूरसागर में प्रतीक योजना, पृ० २२ से उद्धृत ।

१२२- डॉ० कुमार विमल: सौंदर्यशास्त्र के तत्व, पृ० २७० से उद्धृत ।

१२३- वही, पृ० २७६

१२४- डॉ० जगदीशप्रसाद श्रीवास्तव, मिथकीय कल्पना और आधुनिक काव्य, पृ० २३९

१२५- डॉ० कुमार विमल, सौंदर्यशास्त्र के तत्व, पृ० २६६

१२६- George Whalley: Poetic Process: Page-164

१२७- डॉ० प्रतिभाकृष्णाबल, छायावाद का काव्य शिल्प, पृ० १९६

१२८- Rene Welleck and Austin Warren: Theory of literature: Page-194

१२९- C.M.Bowra: The Heritage of symbolism:Page-98

१३०- C.M.Bowra: The Heritage of Symbolism:Page-97

१३१- Urban: Language and Reality ,Page-415

१३२- E.Underhill : Mysticism : Page-126

१३३- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, चिन्तामणि(भाग द्वितिय)पृ० ११६

१३४- महेन्द्रनाथ सरकार, हिन्दु मिस्टिस्जिम, पृ० २५०

१३५- प्रो० राजाराम रस्तोगी, साहित्यिक निबंध(प्रतिकवाद) पृ० २८३

१३६- डॉ० प्रेमनारायण शुक्ल, हिन्दी साहित्य में विविध वाद, पृ० ४७२

१३७- डॉ० जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव, मिथकीय कल्पना और आधुनिक काव्य, पृ० ६

१३८- 'Myth :an ancient traditional story of gods or heroes, offering an explanation of some fact or phenomenon: a fable : a ficticious person or thing.Mythology: a collection of Myths'-Chambers Compact English Dictionary.

१३९- Myth fulfills in Primitive culture an indispensable function', it expresses,enhances and condifies belief; it safe guards and enforces,morality; It Vouches for the efficiency of ritual and contains practical rules for the guidance of man- Encyclopaedia Britanica:Vol.XV.

१४०- Myths are the tales of supernatural world and share also therefore the characteristics of the religions complex" - Ency Clopaedia of Social Science,Vol.II:Page-220

१४१- Myth is a story presented as having actually occured in a previous age explaining the cosmological and super-natural traditions of a people, their gods,heroes,cultural trails,religions belief etc-Marie Leach:Dictionary of Folklore: Part-II,Page-778

१४२- Rene Welleck & Austin Warren: Theory of Literature'. Page-250.

१४३- Myth is an indispensable Principle of Unity in individual lives and in the life of society-George whalley: Poetic Process:Page-178.

१४४- Wach : The comparative study of Religions: Page-65

१४५- डॉ० नगेन्द्र, पाश्चात्य समीक्षाशास्त्र सिद्धान्त,और परिदृश्य, पृ० १०६ से उद्धृत ।

१४६- वही, पृ० १०६ से उद्धृत ।

१४७- वही, पृ० १०६ से उद्धृत ।

१४८- Five approaches of Literary criticism:ed by W.Scott.

१४९- A Myth is that literary from that is peculiarly Suit-able for the expression of the most basic and deepest faith-belief in rights of a culture-Science and Religion: Page-225.

१५०- Myth is not something freely invented but a necessary made of feeling and belief which appears in the course of history and seizes upon human consciousness-Myth, Symbolism and Truth: Page-3

१५१- संपादक, श्री राहुल सांकृत्यायन और डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय : हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास(षोडश भाग) पृ० १२०

१५२- अज्ञेय : स्रोत और सेतु, पृ० ६५

१५३- संपादक, धीरेन्द्र वर्मा, मानविकी परिभाषा कोश, पृ० १७५

१५४- शम्भुनाथ सिंह, नया प्रतीक(मार्च १९७८) पृ० ६०

१५५- Encyclopaedia of Religion and Ethics: Vol.IX,Page-118-120

१५६- डॉ० नगेन्द्र, मिथक और साहित्य, पृ० १८ से उद्धृत ।

१५७- डॉ० सत्येन्द्र, लोक साहित्य विज्ञान, पृ० १६८

१५८- डॉ० नगेन्द्र, मिथक और साहित्य, पृ० २१

१५९- वही- पृ० २१

१६०- वही- पृ० २१